UNIVERSAL LIBRARY
OU_180966
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/J25T Accession No. H2442

Author जैन, आनन्दप्रकाश।

Title तीसरा नेत्र। 1957

This book should be returned on or before the date last marked below.

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ५१

तीसरा नेत्र

[ऐतिहासिक उपन्यास]

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य ढाई रुपये

मुद्रक
बलदेवदास
संसार प्रेस, बनारस

विषय-सूची

	इस उपन्यासके विषयमें		५
१.	उद्दण्ड पुत्र	...	१५
२.	प्रतिद्वन्द्वी	...	२९
३.	राजपुरोहितकी कन्या	...	४२
४.	सिद्धनाथका संकल्प	...	५६
५.	कर्पूरमञ्जरी	...	७०
६.	यवनोंका राजदूत	...	८४
७.	देवगुरुकी भार्या	...	९८
८.	दुपट्टेमें जागीर	...	११२
९.	एक ज्योतिषी, एक नजूमी	...	१२६
१०.	कद्रूका शाप	...	१४०
११.	तीसरा नेत्र	...	१५४
१२.	पूर्णाहुति	...	१६८

इस उपन्यासके विषयमें

हमारे पुराणोंमें प्रायः ही ऐसी कथाएँ आई हैं, जिनमें तपस्वी ऋषियोंने अपने कोपभाजनोंको शाप दिये हैं। वे शाप ज्यों-के-त्यों फलीभूत भी हुए बताये गये हैं। पुराणोंकी इन बातोंपर विश्वास किया जाय या नहीं यह एक अलग बात है, परन्तु इतना अवश्य है कि इन धर्मकथाओंमें कहानी कहनेकी प्रारम्भिक कलाके दर्शन होते हैं। इस प्रारम्भिक कहानी-कलामें संयोगसे किसी घटनाका घट जाना नितान्त स्वाभाविक था, क्योंकि वास्तविक जीवनमें भी विज्ञानकी समझ बूझ न होनेके कारण विविध घटनाओंकी कड़ियाँ ढूँढ़ना कठिन था। उस समय विपत्तियोंके रूप 'दैवी' थे—वे किन्हीं पूर्व जन्मोंके पापोंसे उदित होती थीं या कभी न दिखाई देनेवाले भगवान्‌की इच्छासे! पुराणोंके कथाकारोंने ऋषियों और तपस्वियोंके शापोंको भी उन दैवी कारणोंमें लिया। 'शाप' ने उनकी कथाओंमें कुतूहल बढ़ानेके लिए उत्तम 'भविष्य-संकेत' का काम किया।

उस समयकी बात तो उस समय रही। मगर आज भी भारतीय धर्म-प्राण जनताका एक बहुत बड़ा भाग शाप दिये जाने और उसके दैवी नियंत्रणसे फलीभूत होनेपर विश्वास करता है—इस बीसवीं सदीमें! तब इस बातकी आवश्यकता सामने आती है कि शापके दिये जाने और उसके फलीभूत होनेके बीचकी जो कड़ियाँ हैं वे आजका कथाकार उनके सामने खोलकर रखे। प्रस्तुत उपन्यास इसी प्रयत्नके ऊपर आधारित है। इस नाते इस उपन्यासका अंतर ऐतिहासिक है।

किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासका चोला भी ऐतिहासिक ही होना चाहिए। प्रस्तुत कथाके निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्य हमें मिलते हैं:—

मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेबने काशीके राज्यको अवधके सूबेमें मिला दिया था। मुहम्मदशाहके समयमें काशीका यह राज्य मीर रुस्तमअलीकी सूबेदारीमें था। आठ लाख वार्षिक अवधके नवाब बुरहानुलमुकको देनेके अतिरिक्त काशीके ज़रज़मीनके मालिक वही थे। गंगापुरके ज़मींदार मनसारामपर उनकी विशेष कृपा थी। उनके लड़के बलवन्तसिंहको वह बहुत चाहते थे, यहाँ तक कि बलवन्तसिंहको उन्होंने अपने यहाँ ही रख लिया। काशीकी जागीरका काम रुस्तमअलीकी ओरसे मनसाराम देखने लगे। कालान्तरमें, अनेक राजनीतिक झगड़ोंसे सकुशल निकलकर, मनसाराम ही काशीके ठेकेदार नियत हो गये। मगर राज्य-प्राप्तिके एक वर्ष बाद ही, सन् १७३४ ईसवीमें उनकी मृत्यु हो गई। उनके बाद बलवन्तसिंह काशीके राजा बने। इन्हींके जीवनपर 'बलवन्तनामा' की रचना हुई।

इस 'बलवन्तनामा' में बलवन्तसिंहके एक पूर्वपुरुष कट्‌ठू मिश्रकी चर्चा आई है। उसके अनुसार उस समय काशीका राज्य राजा बनारके अधीन था। कट्‌ठू मिश्र उस समय काशीसे छः कोस दूर, उटाटरिया नामक गाँवमें रहते थे। राजा बनारके दान और कट्‌ठू मिश्रकी उपेक्षाका जो झगड़ा इस उपन्यासमें आया है वह बलवन्तनामेमें संक्षिप्त रूपसे वर्णित है। उसीमें उस शापकी बात आती है, जो इस उपन्यासका मेरुदण्ड है। शापके फलीभूत होनेका सम्बन्ध महमूद ग़ज़नवीके अल्पवयस्क सेनापति सालार मसऊद ग़ाज़ीके साथ जुड़ा मिलता है।

जिस कालकी ये घटनाएँ हैं उस कालका इतिहास बड़ा अस्तव्यस्त मिलता है। 'बलवन्तनामा' में बनारसपर सालार मसऊद ग़ाज़ीके आक्रमणकी तिथि ४२० हिजरी बताई गई है। श्री संपूर्णानन्द वर्माकी पुस्तक 'चेतसिंह और काशीका विद्रोह' में इस आक्रमणका अनुमानित काल १०५९ विक्रम संवत् लिखा मिलता है, यद्यपि पुस्तकके अन्तमें उस कालके

निश्चित होनेके संबन्धमें उन्होंने सन्देह प्रकट किया है। यदि इस अनुमानको सही माना जाय, तो उस आक्रमणका काल १००२ ईसवी सन्‌के आसपास होना चाहिए, और बलवन्तनामाके अनुसार १०२६ ईसवी। भारतीय इतिहासमें यह काल बड़ी ही राजनीतिक उथलपुथलका रहा है। बड़े बड़े राजाओंके तख्ते चार दिनकी चाँदनी देखकर उलट गये। उनके बारेमें ही यह पता लगाना कठिन है कि कौन कहाँका राजा था—छोटे राजाओंकी तो बात ही अलग है। अतः उक्त दोनों पुस्तकोंके अनुसार कालका यह २७ वर्षका अन्तर उपन्यासको सही सही राजनीतिक पुट देनेमें बहुत बड़ी बाधा बनता है—उस समय तो और भी, जब अन्य प्रामाणिक इतिहासोंमें बनारसपर सालार मसऊदके आक्रमणको स्वीकार ही नहीं किया गया है!

'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया [भाग ३] के पृष्ठ २६ पर बनारसपर आक्रमण होनेका पता चलता है, मगर वह भी सालार मसूदके द्वारा नहीं, बल्कि विगत महमूद ग़ज़नवीके उत्तराधिकारी मसूदके भारतीय प्रतिनिधि अहमद नियाल्तगीनके द्वारा, जब कि यही काल सालार मसूदकी मृत्युका है। 'धर्मयुद्ध' के इस 'शहीद' के जीवनपर जो हमारे पुराणों जैसी एक पुस्तक मिलती है उसमें उसकी विजयों और वीरतापूर्ण कृत्योंका बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इस पुस्तकका नाम है 'मीरात-ए-मसऊदी'।

जिन महाशय [शेख अब्दुर्रहमान चिश्ती] ने इस धर्मकथाको लिखा है वह मुग़ल सम्राट् जहाँगीरके समयमें रहा करते थे। उन्होंने 'मीरात-ए-मसऊदी' को एक अन्य पुस्तकके आधारपर लिखा था, और साथ-ही-साथ सालार मसऊद ग़ाज़ीकी रूह भी रातोंको सपनोंमें आकर उनका पथप्रदर्शन करती रही थी! जिस पुस्तकके आधारपर उन्होंने अपना इतिहास लिखा था [तवारीख़े महमूदी', लेखक मुल्ला मुहम्मद ग़ज़नवी] उसका पता इतिहासकारोंको लाख सिर पटकने पर भी नहीं लगा। खेद है कि

आजके इतिहासकारोंको अपने ऐतिहासिक पात्रोंकी आत्माओंके दर्शन कर पानेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है !

अस्तु, इस अप्रामाणिक ग्रंथसे पता लगता है कि सालार मसऊदको महमूद ग़ज़नवी बहुत चाहता था, मगर वज़ीरको उससे जलन थी। वज़ीर से अकेले निबटनेके लिए, महमूदने कुछ दिनोंके लिए सालार मसऊदको अपनेसे अलग कर देना चाहा। मसऊद ग़ाज़ी बननेकी तमन्ना लिये, एक बहुत बड़ी सेनाके साथ हिन्दुस्तान आया। उसके पीछे ही महमूदकी सन् १०३० ई० में मृत्यु हो गई। इधर वह धर्मके नाम पर भारतके खेतखलिहान उजाड़ता, राजाओं-प्रजाओंको मारता-काटता, स्त्रियों-बच्चोंको ग़ुलाम बनाता हुआ आधुनिक उत्तर प्रदेशके बहराइच ज़िले तक आ पहुँचा। रास्तेमें मुलतान और देहलीको वह मिस्मार कर चुका था। लगभग चालीस दिनके मरणान्तक युद्धके बाद दिल्लीके वीर राजा महीपालने अपने पुत्रों सहित वीरगति पाई थी। उसी बीच महीपालके पुत्र गोपालकी गदासे सालार मसूदकी नाक टूटी थी।

मियाँ राजब सालार मसूदकी सेनाका कोतवाल था, और उसका बहुत अधिक विश्वासपात्र था। उपन्यासमें उसका चरित्र जो थोड़ा-बहुत आया है वह 'मीरात-ए-मसूदी' के आधार पर है।

कन्नौजके राजा आजीपालने महमूदकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसने मसूदका स्वागत किया और अपने देशको उसके घिनौने पंजोंकी खरोंचसे बचा लिया। वहाँ धनधान्य पर ही बीती। वहाँसे आगे चलकर उसने हिन्दू तीर्थ सतरखको अपना हेडक्वार्टर बनाया और चारों ओर सेनाएँ भेजकर इलाके जीतने आरम्भ किये। बप्पा और नरहरि चौधरी उसीके परगनोंके मुखिया थे।

सतरखमें रहते ही मसूदने मलिक फ़ज़लको बनारस और उसके आस-पासका इलाका जीतनेके लिए भेजा, ऐसा 'मीरात-ए-मसूदी' की तीसरी

दास्तानमें लिखा मिलता है। यही वह समय था, जब अहमद नियाल्तगीनका आक्रमण बनारस पर हुआ कहा जाता है, और कुछ इतिहासकारोंके अनुसार इन्हीं दिनों स्वयं ग़ज़नीके सुल्तान मसऊद [सालार मसूद नहीं] ने काश्मीर पर आक्रमण किया था। अन्य दो मान्यताओंके विपरीत अप्रामाणिक कथा 'मीरात-ए मसूदी' के नायकको ही इस उपन्यासमें बनारसका आक्रान्ता माननेका मुख्य कारण यह है कि हमारी सारी कथा 'बलवन्तनामा' के आधार पर है। राजा बलवन्तसिंहके वंशमें जो कथा सात सौ बरसों तक, दादासे पोतोंके कानोंमें ढलती चली आकर बलवन्तनामामें अंकित हुई उसमें मूल आक्रान्ताका नाम ही सबसे अधिक स्मरणीय रहा होगा क्योंकि वही उनके वंशकी उस कथाकी चरमसीमा है।

'तारीख-उस्-सुबुक्तगीन' के अनुसार बनारस पर आक्रमणके समय वह क्षेत्र कलचुरीवंशके प्रबल राजा महाराजा गांगेयदेव चेदिके राज्यके अन्तर्गत था। वह बड़ा प्रतापी राजा माना जाता है। बनारस जैसे तीर्थ पर आक्रमण होनेके समय उसका प्रबल प्रताप कहीं सोया हुआ था ऐसा माननेकी कोई वजह नहीं है, क्योंकि बादमें भी मसूदको पराजित करनेके लिए तीस लाख सेना एकत्र हुई थी। तब अवश्य ही यह आक्रमण अनायास ही बेखबरीमें हुआ होगा ऐसा अनुमान होता है। नियाल्तगीनके आक्रमणके प्रसंगमें ही यह बात आनेके कारण—दोनोंके आक्रमणोंका समय एक होनेके कारण—हमने बनारस पर गांगेयदेव चेदिके अधिकारकी बात स्वीकार कर ली है।

काशीका विश्वनाथ मन्दिर भी सदासे यही नहीं रहा है, जो आज है। काशी पर यवनोंका सबसे पहला आक्रमण शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी [११६४ ई०] के द्वारा हुआ बताया जाता है। [देखिए 'बनारस'—भारत सरकार द्वारा प्रकाशित अंगरेज़ी गाइड, तथा हिन्दी गाइडमें श्री 'बेढब बनारसी' का लेख]। ऊपर जो विवरण हम दे आये हैं उससे यह तो सिद्ध

हो ही जाता है कि मुहम्मद ग़ोरीका आक्रमण ही बनारस पर पहला आक्रमण नहीं था। चाहे अहमद नियाल्तगीनने, चाहे सालार मसूदने, दोनोंमेंसे किसीने महमूद ग़ज़नवीकी मृत्युके तुरंत बाद ही बनारसका सर्वनाश किया था। काशी विश्वनाथका जो पुरातन लिंग तब खंडित हुआ था और उसके मन्दिरको भूमिसात् किया गया था, उसे तुरंत बाद ही महाराज गांगेयदेव चेदिने निर्मित कराया था। बादमें भी यह मन्दिर तीन-चार बार बना और बिस्मार हुआ। उस समयकी काशी भी यही काशी रही होगी, जो आज है यह अनुमान लगाना तो ग़लत ही है, जब कि पुरानी 'काशी' के खंडहर आज भी मौजूद हैं। जिन घाटोंका नामकरण ग्यारहवीं शताब्दीसे पहले हो चुका थी वे उस नामसे ही उस समय भी मौजूद रहे होंगे। लेकिन काशीकी गलियोंका 'मनोहर' रूप भी यही रहा होगा, जो आज है, यह केवल एक मधुर कल्पना है। इस रूपको हमने पुरानी काशीमें भी ज्योंका त्यों रखा है, नहीं तो उन लोगोंके सपने तिरोहित हो जायँगे जिनके मनको काशीकी ये गलियाँ भा गई हैं!

बारूदका आविष्कार यूरोपमें ही १३०० ई० के आसपास बताया जाता है। तब भारतमें किस प्रकार इस उपन्यासके नायकने विस्फोटक अग्निका प्रयोग किया यह बात 'मीरात-ए-मसूदी'के लेखकसे पूछी जानी चाहिए थी। हमने तो उसकी बात पर इसीलिए विश्वास कर लिया है कि उसने मज़हबके जोशमें आकर अपने नायक ग़ाज़ीके वीरोंको इसी मौत मारना पसंद किया था। [देखिए 'ईलियट एंड डासन की 'हिस्ट्री आफ़ इंडिया' भाग २, पृष्ठ ५५४]। इसीमें [पृष्ठ ५५४ पर] उन काँटोंकी गेंदोंकी चर्चा आती है, जिन्हें हमने इस उपन्यासमें प्रयोग किया है। 'नेहरने' और 'जादूकी काठियों' वाली बातें भी हमारी मनगढ़न्त नहीं हैं। [देखिए उपर्युक्त पृष्ठ ५४६-५४७, यद्यपि उसके लेखकने अपने नायकको 'नेहरने' से मारना पसंद न करके उसे विषके प्रभावसे मुक्त कर दिया है।]

'कर्पूरमंजरी' नाटक भारतेन्दु हरिश्चद्रने अनुवादित किया था और वह काशी नागरी प्रचारिणी सभाके द्वारा प्रकाशित उनके नाटकोंके संकलनमें प्राप्य है। उसके बारेमें जो विचार उपन्यासमें आये हैं वे विध्वंसकारी नहीं हैं। हमारा पुराना साहित्य और शास्त्र बहुत सम्मानित, गूढ़, सार्थक और सुन्दर हैं। मगर उसकी असुन्दरताकी ओर बिना एक आँख रखे उनका अवलोकन करना प्रगतिकी राहमें बड़ा रोड़ा है—वह दूर होना ही चाहिए।

उपन्यासके खल-पक्षको हमने यथाशक्ति विदेशियोंके रूपमें लिया है, मुसलमानोंके रूपमें नहीं। इस भावनाको उभरनेसे रोकनेकी पर्याप्त चेष्टा की गई है। फिर भी यदि कुछ साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके पाठक इससे 'साम्प्रदायिक रस' ग्रहण करना चाहें, तो उनसे निवेदन है कि उनके पढ़नेके लिए यह उपन्यास नहीं लिखा गया है; वे लेखकको क्षमा ही करें, तो कृपा होगी।

अन्तमें इतना निवेदन और है कि इस ऐतिहासिक उपन्यासमें तथाकथित 'अतीत रस' की ओर अधिक ध्यान न देकर, कथानकके गठन और आजकी अवस्थामें उसके उपयोग पर ही अधिक ध्यान रखा गया है। अतः इसे उसी दृष्टिसे देखनेकी ज़रूरत है।

८५ भाटवाड़ा, मेरठ,
७ नवम्बर १९५६ ई०

—आनन्दप्रकाश जैन

तीसरा नेत्र

•

: उद्दण्ड पुत्र :

ग्यारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें बनारसमें राजा बनारका शासन चलता था। बनारससे छः कोस दूर उटाटरिया नामक गाँवमें कट्टू मिश्रका निवास था। आँखें बंद कर, भगवान्का नाम लेकर जिस दुखीके सिरपर हाथ रख देते थे उसका मंगल होता था। दूर दूर तक नाम था। सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग कर चुके थे। रात-दिन भगवान् विश्वनाथकी आराधना और परलोक-साधनामें लीन रहना ही उनका एक मात्र कार्य रह गया था। घरका एक बड़ा कोना मन्दिरका रूप ले चुका था। भगवान् शिवकी एक मूर्त्ति ताण्डवकी मुद्रामें वहाँ प्रतिष्ठित थी। उसकी ओर जिज्ञासा, श्रद्धा, भक्तिभावसे निहारते निहारते आँखोंमें एक अलौकिक स्थिरता व्याप्त हो गई थी। संध्याको दो घड़ीका समय शिवके भक्तोंको सान्त्वना देने और अपनी वाणीसे सत्यं, शिवं और सुंदरम्की व्याख्या करनेमें बिताते थे। उनके त्याग और विद्वत्ताकी धाक काशीके पण्डितोंमें भी थी।

जगन्नाथ पण्डित और भोलानाथ पण्डित कट्टू मिश्रके दो लड़के थे। पिताके स्वभावके विपरीत दोनों ही क्रोधी और अस्थिर प्रकृतिके थे। उनकी ओरसे कट्टू मिश्रके मनमें बहुत संताप रहता था। इसीलिए अपनी अधिकांश सेवाका भार उन्होंने गाँवके एक अन्धे शिवभक्त, बंसीधर ब्राह्मण की युवा कन्या पार्वतीको सौंप दिया था। यह सेवाभार किसी दिन उन्होंने कह कर नहीं सौंपा था। किस प्रकार अनजानेमें ही यह एक स्वीकृत तथ्य बन गया था इसका ध्यान न कट्टू मिश्रको ही था, न गाँवके अन्य जनोंको। लड़कोंने जिस पितृस्नेहको अपनी निरन्तर अवज्ञासे ठुकरा दिया था वही उन्होंने अवचेतन रूपसे पार्वतीके ऊपर उँडेल दिया था।

एक दिन काशीके स्वनामधन्य पण्डित, आचार्य गणेशदत्त अपनी कन्याका संबन्ध कट्ठू मिश्रके बड़े लड़के जगन्नाथ पण्डितके साथ निश्चित करनेके उद्देश्यसे पधारे। साथमें शंकर और हनुमान दो शिष्य थे। मन्दिरको छोड़कर घरके एक मात्र कोठेमें पण्डित कट्ठू मिश्र, तीनों अतिथि और एक कोनेमें मन ही मन शंकरस्तोत्रका पाठ करता हुआ छोटा लड़का भोलानाथ बैठे थे। भोलानाथके आगे चौकी पर पुस्तक खुली हुई थी, यद्यपि सारा स्तोत्र पूरी तरह उसे कंठस्थ था।

पण्डित गणेशदत्तकी किसी बातके उत्तरमें कट्ठू मिश्र कह रहे थे : "पुत्रवधूके रूपमें आप जैसे कुलीन ब्राह्मण और विद्वान् पण्डितकी कन्या मिले, इस चोलेका इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है। यह संबन्ध मुझे पूरी तरह......"

यही वह स्थल था, जिसके लिए इतनी देरसे भोलानाथ पलोथी मारे बैठा था। पिताकी बातको बीचमें ही काटकर उसने कहा, "काशीमें पण्डितजीकी हवेली तीन मंज़िल ऊँची है, पिता जी। जब भोले बाबाके दर्शन करने गया था, तब देखी थी। इतना वैभव, इतना धनमान काशीके हर पण्डितको प्राप्त नहीं है......"

कट्ठू मिश्रने तीव्र दृष्टिसे अपने पुत्रकी ओर देखा। फिर अतिथियोंकी ओर देखकर बोले, "देखिए, पण्डित जी, काशी राज्यमें आपका कितना मान है इसे हमारे घरका बच्चा बच्चा जानता है......"

"भला कोई कैसे नहीं जानेगा ?" भोलानाथने फिर पिताकी बात काटते हुए कहा, "जिस विप्रको केवल विद्वत्ताके उपहारमें पच्चीस सोनेके नंदी प्रति मास राजकोशसे मिलते हों, उसकी समृद्धि क्या किसीसे छिपाये छिप सकती है ?"

निश्चय ही पण्डित गणेशदत्तको राजा बनारके राजकोशसे प्रति मास पच्चीस सोनेके सिक्के मिलते थे, जिन पर एक ओर शंकरके वाहन तथा

दूसरी ओर एक अश्वारोहीके आकार अंकित रहते थे। किन्तु पण्डित गणेशदत्तके धनवैभवके बखानसे सिवा प्रशंसाके कोई और अर्थ भी हो सकता है यह सिवा कट्टू मिश्रके कोई और नहीं समझ पा रहा था। इसीलिए पण्डित गणेशदत्तने भोलानाथकी बात सुनकर कहा, "बेटा, अपने घरपर हमारी विभुताका वर्णन करके हमें क्यों लज्जित करते हो? कन्याका पिता कितना ही धनाढ्य हो, समधीके आगे वह सदा ही दीन है....."

भोलानाथने उन्हें भी आगे नहीं बोलने दिया। बीच हीमें वह बोल उठा, "सो तो सब ठीक ही है, महाराज। किन्तु कन्याके विवाहमें उस विभुताका कितना अंश कन्याके निमित्त सुरक्षित होगा, यह बिना विभुताका बखान किये कैसे जाना जा सकता है? इसीलिए....."

कट्टू मिश्र अब और अधिक सहन नहीं कर सके। उन्होंने तीव्र स्वरमें कहा, "चुप रह, रे उद्दण्ड छोकरे! तुझे यहाँ किसने बैठनेके लिए कहा था? भगवान् शंकरका स्तोत्र सामने रखकर तू लौकिक अर्थकी बात करता है, भोले फक्कड़ बाबाका अपमान करता है! अभी उठकर यहाँसे चला जा!"

भोलानाथ जानेके स्थान पर उच्च स्वरसे शंकरस्तोत्रका पाठ करने लगा। कट्टू मिश्र कुछ समय तक उसकी ओर आशंकामिश्रित क्रोधके साथ देखते रहे। जब उसका पाठ बराबर चलता रहा, तो उन्होंने पण्डित गणेशदत्तकी ओर ध्यान दिया।

पण्डित गणेशदत्तके दोनों शिष्य अपने मुंडे सिरों पर विराजमान लंब-शिखाओंको जल्दी जल्दी हाथसे सहलाते हुए, भोलानाथकी आकृतिको घूर रहे थे। मुँह पर हाथ फेरकर उसकी गरमी हथेली में लेते हुए पण्डित गणेशदत्तने कहा, "मिश्रजी, यह लड़का भी हमारा उतना ही स्नेहभाजन है, जितने आप पूजनीय हैं। यह मेरी ही भूल थी कि इस अत्यावश्यक विषयकी ओर मेरा ध्यान पहले नहीं गया। वास्तवमें उसने ठीक दिशाकी

ओर संकेत किया है। कन्याके निमित्त जो द्रव्य मैंने सुरक्षित रखा है वह......"

संतप्त स्वरमें कट्टू मिश्रने पण्डित गणेशदत्तको टोका : "ठहरिए, पण्डितजी...मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप मेरे लड़केके साथ अपनी कन्याका संबन्ध क्यों करना चाहते हैं ?"

आश्चर्यसे पण्डित गणेशदत्तने कहा, "यह तो प्रकट ही है, मिश्र जी। जगन्नाथ पण्डित रूपवान् है, गुणवान् है, विद्वान् है, सकल शास्त्रोंमें निष्णात है—कौन कन्याका पिता इतना मूर्ख होगा, जो ऐसे वरसे अपनी कन्याका संबन्ध न करना चाहे ?"

कट्टू मिश्र उत्तरमें यही सुननेकी आशा रखते थे। उन्होंने कहा, "आपने जो कहा वह उचित है। अब आप मुझसे भी पूछेंगे कि मैं क्यों आपकी कन्याको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करना चाहता हूँ।"

"यह तो आपकी दया ही है, महाराज," पण्डित गणेशदत्तके शिष्य शंकरने उनकी ओरसे उत्तर दिया।

"फिर भी मुझे बताना ही होगा" कट्टू मिश्र बोले : "मैं इस संयोगसे इस कारण प्रसन्न हूँ कि आपकी कन्या विदुषी है, सुशीला है, सेवा-भाव रखनेवाली है और शास्त्रोंमें जगन्नाथसे कम पाण्डित्यकी स्वामिनी नहीं है। इस पंडवाके ऊपर एक पंडिताईनके डंडेकी आवश्यकता है, जिसका प्रबंध आपकी विदुषी कन्या चतुराईके साथ कर सकती है। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए, इसलिए मैं भगवान् शंकरके नामकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि......"

व्यर्थ ही भोलानाथने बाहर चले जानेके संबन्धमें पिताकी आज्ञाकी अवहेलना नहीं की थी। उसने यथासंभव चुप ही रहनेका निश्चय किया था। किंतु जब मामला तंत पर आ गया, तो उसने अपना हस्तक्षेप अनिवार्य समझा। पिताको आगे बढ़नेका अवसर दिये बिना उसने विनम्र निवेदन

किया : "पिता जी, भैया पार्वतीको किरातार्जुनीय पढ़ा रहे हैं। कहिए, तो उन्हें बुला लाऊँ ?"

किसीके बीचमें बोल पड़ने पर गम्भीर विद्वान् आगे नहीं बोल पाता। भोलानाथका स्वर कानोंमें पड़ते ही कट्टू मिश्रका बोल बंद हो गया था। आहतकी भाँति वह अपने मानके मर्दन करने वाले पुत्रको रोषसे निहार कर बोले, "भोला !"

यह उसके प्रश्नका उत्तर नहीं था। इस विचित्र पुकारका उत्तर मौनसे देता हुआ वह पिताकी ओर आगे सुननेके लिए ताकने लगा।

"भोला !" कट्टू मिश्रने स्वरको और भी तेज़ करते हुए पुकारा।

"हाँ, पिता जी", भोलाने घबरा कर उत्तर दिया।

"तू इसी समय यहाँसे उठकर चला जा !"

भोलानाथने जानेकी कोई चेष्टा नहीं की। वह जल्दी-जल्दी तीन-चार बार पलकें झपका कर रह गया।

"यदि तू काशीके इन सम्मानित अतिथियोंके सामने अपने पिताकी अवज्ञा करेगा, तो......"कट्टू मिश्रका गला रुंध गया,"......तो भगवान् शंकर तुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे......!"

भोलानाथ बुद्धिमानोंकी भाँति समझ गया कि अब उसके लिए उस विवाह-वार्त्तामें सम्मिलित रहना असम्भव है। शंकर-स्तोत्रको पटाकसे बन्द कर, उसे ज्यों का-त्यों चौकी पर छोड़कर, अपने यज्ञोपवीतको कस कर मुट्ठीमें बंद किये वह सीधे मुँह कोठेसे बाहर हो गया। जब तक वह आँखोंसे ओझल नहीं हो गया, तब तक कट्टू मिश्र उसकी नंगी पीठको निहारते रहे। इसके बाद कुछ प्रकृतिस्थ होनेकी चेष्टामें उन्होंने अपने माथे पर हाथ फेरा और दो क्षणों तक मौन रहे।

आतिथेयका मान रखनेके लिए पण्डित गणेशदत्तने इस काण्डको

हँसीमें उड़ा देना चाहा। "हंहंहंहं, बच्चा है अभी। इतना रोष उस दीन पर न कीजिए, मिश्रजी।"

विद्वत्तासे बोझिल नेत्र कट्ठू मिश्रने सिर ऊपर उठा कर धीमे स्वरमें कहा, "पण्डित जी, मनुष्यकी सबसे बड़ी असमर्थता यही है कि वह जो कुछ समझता और जानता है वह दूसरे मनुष्यको ज्यों-का-त्यो नहीं दे सकता। हमें जो मिलता है वह अधिक मूल्यवान होनेपर भी हम नहीं लेते। जो नहीं मिलता वह निःसार होने पर भी उसके लिए माया और प्रपञ्च रचते हैं।"

हनुमानने श्रद्धाके साथ सिर हिलाया। "इस प्रवचनका एक एक शब्द सौ स्वर्णमुद्राओंका मूल्य रखता है।"

"किस लिए सञ्चय करना है?" कट्ठू मिश्रने कहा। "भगवान् शंकरके ताण्डव नृत्यके लिए यह विस्तीर्ण धरा एक मञ्च है। हम सब उस मञ्चके सहयोगी पात्र हैं। अपनी-अपनी भूमिकामें हम सब एक दूसरेसे लड़ते-झगड़ते जो कुछ एकत्र करते हैं, उस सबको भोगनेका अवकाश भी भोले बाबा हमें नहीं देंगे। एक दिन आयगा, जब शंकरका तीसरा नेत्र अंधकारमें तीव्र अन्तर्भेदी प्रकाश-किरणके साथ खुलेगा और इतनी ललकसे जोड़ा-सँजोया सब कुछ उसमें भस्मीभूत हो जायगा।"

पण्डित गणेशदत्तके शिष्य शंकर और भोलाने कल्पनामें ही उस दिनको साक्षात् देखा, और मन ही मन सिहर कर मुँह बा दिये। पण्डित गणेशदत्तने मन ही मन भगवान् विश्वनाथकी मूर्त्तिको प्रणाम करके अन्तरिक्षमें हाथ जोड़े।

कट्ठू मिश्रने कहा, "इसी कारण मैं किसी ग्रहण न करने योग्य वस्तुको भगवान् शंकरके अर्पण करना चाहता था कि वह मूढ़ बीचमें ही बोल उठा। अब...अब..." कहते कहते कट्ठू मिश्रने सामने देखा। कोठेके द्वारसे ही उन्हें अपने बड़े पुत्र जगन्नाथ पण्डितके दर्शन हुए। शायद

भोलाने शहर जाकर पार्वतीको किरातार्जुनीयका पाठ पढ़ानेका उत्तरदायित्व अपने सिर ले लिया था और अपने अग्रजको उस महत्त्वपूर्ण गोष्ठीमें सम्मिलित होनेकी छुट्टी दे दी थी।

मिश्रजी चुप हो गये। जगन्नाथने भीतर आकर पण्डित गणेशदत्त तथा उनके शिष्योंकी कर-वन्दना की और चुपचाप पिताकी चारपाईके पायताने बैठकर निवेदन किया : "पिताजी, पार्वतीको किरातार्जुनीय पढ़ानेमें एक प्रसंग बड़ा विकट आ पड़ा है और मैं उसके प्रश्नका उत्तर नहीं दे पा रहा हूँ।"

कद्दू मिश्र यद्यपि अपने पुत्रोंकी ओरसे शंकालु ही रहते थे। किन्तु वह केवल एक शंका निवारण करने आया है, वार्तामें हस्तक्षेप करने नहीं आया है, यह जानकर वह मन-ही मन प्रसन्न हुए। इसके अतिरिक्त होनेवाले समधीको अपने पुत्रकी योग्यता दिखानेकी बात भी किसी पिताके मनमें उत्पन्न होनी अस्वाभाविक नहीं है, चाहे वह कितना ही निर्लिप्त क्यों न हो। उन्होंने सानन्द कहा, "पूछो बेटा, पूछो। यहाँ महापण्डित गणेशदत्तजी हैं। तुम्हारी हर शंकाका समाधान हो जायगा।"

जगन्नाथके होंठों पर एक अलक्ष्य मुसकराहट आई। पण्डित गणेशदत्तको लक्ष्य करके उसने पूछा, "जुएमें हार जानेपर, पाण्डवपुत्रोंको उनकी पत्नी द्रौपदीने जिस प्रकार लताड़से भरे, अपमानपूर्ण वचन बोलकर उनकी तर्जना की है वह क्या उचित है? बड़ोंको उचित-अनुचितका बोध करानेका जो अतिरंजित अधिकार महाकवि भारविने अपनी काव्य-कथाकी एक पात्रीको दिया है, वह क्या अनुचित नहीं है?"

"नहीं, पुत्र;" कद्दू मिश्रने उसकी इस भोली शंकासे प्रसन्न होकर कहा। "जब बड़े कुमार्ग पर जाने लगते हैं, और परिवारकी नैया डूबने लगती है, तब छोटोंका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि विनम्र शब्दोंमें उचित-अनुचितका भेद बड़ोंके सामने स्पष्ट कर दें। बड़ोंके कार्यकलापसे छोटोंको

यदि बहुत दुःख पहुँचता हो, तो उनकी वाणीमें थोड़ी तिक्तताका आ जाना भी स्वाभाविक है। महाकवि भारविने किरातार्जुनीयमें जो कुछ लिखा है वह संयत और सुन्दर है।"

"तब तो पाण्डवपुत्रोंने जुएमें राज्य हार कर जो त्याग और तपस्या का वन-जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया था, उसके विरुद्ध द्रौपदीका फिरसे समृद्धिके लिए लड़नेका उपदेश भी उचित ही होना चाहिए, पिताजी ?" जगन्नाथ पण्डितने पूछा।

पण्डित गणेशदत्तके दोनों शिष्योंने इस शंकासे प्रसन्न होकर मौन स्वीकृतिमें गरदन हिलाई। कट्टु मिश्रने भी हर्षित स्वरमें कहा, "द्रौपदी पाण्डवपुत्रोंकी अर्द्धांगिनी थी। उसने जो सलाह दी थी, उचित ही दी थी। यही तुम्हें पार्वतीको समझाना चाहिए।"

पण्डित गणेशदत्तने भी स्वीकृतिसूचक संकेत किया। जगन्नाथने कहा, "समझाना पार्वतीको नहीं, भोलानाथको है, पिताजी। जिन दो बातोंकी व्यवस्था आपने दी है वे ही तो वह यहाँ बैठा पूर्ण कर रहा था। किन्तु आपने उसे फटकार कर यहाँसे भगा दिया इससे वह बहुत दुखित है। जो बात द्रौपदीके लिए उचित है वही भोलानाथके लिए क्यों नहीं है, इसी प्रश्नका उत्तर पानेके लिए उसने मुझे यहाँ भेजा है।"

जगन्नाथकी यह बात सुनकर वृद्ध कट्टु मिश्र आश्चर्यसे उसकी सूरत ताकने लगे। साथ ही बातोंमें इस प्रकार अपने पुत्र द्वारा ठग लिये जानेसे उनका निर्बल अंग-प्रत्यंग काँपने लगा। उन्होंने गरज कर कहा, "रे मूर्ख, आखिर तू कहना क्या चाहता है ?"

जगन्नाथ शान्त रहा। वाणीमें तनिक भी अस्थिरता न लाकर वह बोला, "मैं कुछ विशेष नहीं कहना चाहता, पिताजी। मेरा तो कहना यही है कि आप त्यागी और निर्लिप्त व्यक्ति हैं। आपको किसी भी सांसारिक वस्तुके प्रति लोभ नहीं है। केवल अपनी आत्माकी उन्नति ही आपका

परम लक्ष्य है। इस प्रकारके व्यक्तिको पूरे परिवारकी गतिविधिमें या तो हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, या करे तो सारे परिवारकी समृद्धिकी दृष्टिसे करना चाहिए। जिसे बेटी बनाकर सेवाचाकरी कराते हैं, कल उसका विवाह करनेके लिए आप उसे उसके अन्धे पिताके पास छोड़ आयें ऐसा भी तो उचित नहीं है। तब जिस पुत्रधन-संपन्न पिताके पास लड़कीका संबन्ध लेकर जायेंगे वह भी आपके ही जैसा वैरागी होगा इसकी संभावना नहीं है।"

बातें उद्दण्डतापूर्ण होते हुए भी संयत थीं। इस कारण कन्याके विवाहमें प्रचुर धन व्यय करनेका विचार लेकर आये पण्डित गणेशदत्तको वें बुरी लगते हुए भी तर्कसंगत लग रही थीं। उनके दोनों शिष्योंने मुँहको गोल करके मूढ़मुद्रा अपना ली थी। किन्तु कद्दू मिश्रके क्षोभका अन्त नहीं था। यथासाध्य श्रम करके उन्होंने अपनी वाणीको समतल किया। फिर बोले, "जगन्नाथ, मैं तेरा पिता हूँ।"

"यह मेरा सौभाग्य है," दबी ज़बानसे जगन्नाथने कहा।

"मैं तुझे आजसे नहीं, उस समयसे जानता हूँ, जब तूने जन्म लिया था। आज तू मुझे किरातार्जुनीयका पाठ पढ़ाने आया है! तो सुन, उसमें वनवासी दूतने दुर्योधनके राज्यका जो समाचार लाकर पाण्डवपुत्रोंको दिया था, उसमें यह भी बताया था कि दुष्ट लोग कभी-कभी लोभ और कुचक्रके वशीभूत होकर नीति और धर्मकी बातें करने लगते हैं, मीठी वाणी बोलने लगते हैं और नितान्त परोपकारी बन जाते हैं। ऐसी ही वाणी लेकर तू मेरे पास आया है। ऐसी ही तेरी वृत्ति है। किन्तु इस प्रकारके कुचक्री कहीं-न-कहीं भोंड़ी मूर्खताका प्रदर्शन करते हैं। यह जाने बिना ही कि पण्डित गणेशदत्त अपनी पुत्रीके साथ साथ तेरे घरका कितने धनधान्यसे भरनेका विचार रखते हैं, तेरा लोभ तेरे मस्तक पर चढ़कर बोल रहा है....."

"यह आप मेरा अपमान कर रहे हैं, पिताजी !" जगन्नाथने कुपित होते हुए कहा। उसकी वाणीकी विनम्रता पलभरमें ही लोप हो गई।

कट्ठू मिश्रने उसकी बातके उत्तरमें उसकी ओर तिरस्कारसे देखा और पण्डित गणेशदत्तको लक्ष्य करके बोले, "पण्डित जी, अच्छा ही हुआ मुझे भगवान् पशुपतिनाथकी सौगन्ध खानेका अवसर नहीं मिला। आपके धन-वैभवसे भी मुझे न सहानुभूति है, न वितृष्णा ही है। आप अपनी कन्याका सुख-सौभाग्य मुझे सौंपने आये थे। किन्तु मेरे घरमें उसका क्या भविष्य होगा मैं उसे दर्पणवत् देख रहा हूँ। मैं यह सम्बन्ध अस्वीकार करता हूँ।"

कट्ठू मिश्रके मुख पर एक अपूर्व तेज उभर आया था और वह एकटक सामनेके खाली द्वारकी ओर ताक रहे थे। मुख पर गम्भीरता थी, और मुद्रा स्थिर थी। स्वरमें ज़रा भी कम्पन नहीं था।

जगन्नाथने चौंककर पिताकी ओर देखा। पण्डित गणेशदत्त चकित होकर बोले "यह आप क्या कह रहे हैं, मिश्रजी !"

"मैंने जो कुछ कहा वह भगवान् पशुपतिनाथकी इच्छा है;" कट्ठू मिश्रने कहा। "मेरे पुत्रके साथ विवाहित होकर आपकी विदुषी कन्या सुख नहीं पा सकती यही नियतिका विधान है, जिसे मैं हाथकी रेखाओंकी तरह अन्तरिक्षमें स्पष्ट देख रहा हूँ......"

"मगर, पिता जी, ज़रा सोचिए तो......मेरे कहनेका अर्थ यह नहीं था कि......"

किन्तु कट्ठू मिश्र इस समय किसी दूसरे ही धरातलसे बोल रहे थे। पुत्रकी बातको उन्होंने सुना तक नहीं। अव्याहत स्वरमें उन्होंने आगे कहा, "आपने कट्ठू मिश्रके पुत्रके साथ अपनी कन्याके विवाहका प्रस्ताव करके भोले बाबा पर अपनी अटल श्रद्धाका परिचय दिया है। मैं आपके विश्वासका प्रतिफल आपको देता हूँ। अपने पुत्रोंकी आयुके सभी संसारी पुरुष मेरे पुत्रोंके समान हैं। काशी नगरीमें स्वर्गीय महापण्डित प्रबोध मिश्रका

पुत्र सिद्धनाथ मिलेगा। आजसे पाँच बरस पहले वह वहीं रहता था। वह बहुत गुणवान, सुशील और सकल शास्त्रोंका ज्ञाता है। महापण्डित मुझे बहुत मानते थे। उसे भी मेरा स्मरण होगा। उसके साथ अपनी कन्याका वाग्दान निश्चित कीजिए—वह सुखी होगी।"

कट्टू मिश्रका प्रत्येक वचन किसी प्रकाण्ड भविष्यवक्ताकी भाँति स्थिर स्वरमें निकल रहा था। प्रत्येक संकेत नपा-तुला और स्पष्ट था। सभी उपस्थित जन उसे प्रवचनकी भाँति सुन रहे थे। बातके समाप्त होते ही पहली बार जगन्नाथको यह बोध हुआ कि उसके पिताने उसकी उपेक्षा करके जो कुछ कहा था वह उतना ही यथार्थ था, जितना उस समय दिनका प्रकाश होना।

तीनों अतिथि अवाक् थे। कट्टू मिश्रके त्याग और भक्तिके विषयमें वह बहुत कुछ सुन चुके थे। काशीमें एक बार जगन्नाथको देख भी चुके थे। किन्तु यह उन्हें स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि उन जैसे धनाढ्य ब्राह्मणकी सर्वगुणसंपन्न कन्याको वह केवल इसलिए अस्वीकार कर देंगे कि वह अपने पुत्रको उसके अयोग्य समझते होंगे। अभी तक वह संशयमें थे कि कट्टू मिश्रसे पुनः आग्रह किया जाय या नहीं कि उसी समय उनके अन्तिम निश्चयको गति देनेके लिए एक और काण्ड हो गया।

आहत सर्पकी तरह फुंकार कर जगन्नाथ पण्डित उठ खड़ा हुआ। पिताको लक्ष्य करके उसने कहा, "आपने त्यागी और तपस्वी बननेका जो ढकोसला रच रखा है उसे हम दोनों भाई ख़ूब अच्छी तरह समझते हैं। आप हम दोनों भाइयोंके गले काट कर इस लोक और उस लोक दोनोंमें सुख लाभ करना चाहते हैं। किन्तु जगन्नाथ मिश्रने व्यर्थ ही अब तक इतने शास्त्रोंका पारायण नहीं किया है। प्रबोध मिश्रके जिस अज्ञानी छोकरे पर आपको इतना अभिमान है उसे जब तक मैं शास्त्रार्थमें पराजित न कर दूँगा, तब तक अपनी शिखा खुली रखूँगा।

उस समय जिस मुँहसे पण्डित गणेशदत्त काशीके पण्डितोंका समाज एकत्र करके, उस मूर्खके हाथमें अपनी कन्याका हाथ देंगे वह दर्शनीय होगा !"

जगन्नाथ क्रोधसे पैर पटकता हुआ बाहर निकल गया। ज़ोर-ज़ोरसे वार्त्तालाप होते देखकर, भोलानाथ और पार्वती दोनों पठन-पाठन त्यागकर बाहर निकल आये थे। भोलानाथ जगन्नाथके पीछे-पीछे वापस कोठरीमें घुस गया। पार्वती कोठेमें लपककर पहुँची और जल्दीसे आगतोंको नमस्कार करके उसने कट्टू मिश्रसे पूछा, "क्या हुआ, बाबा ?"

कट्टू मिश्रकी दृष्टि खुले दरवाजे परसे हट कर पण्डित गणेशदत्त पर पड़ी। पार्वतीकी बातका कोई उत्तर न देकर उन्होंने अतिथिसे पूछा, "आपने कुछ निश्चय किया ?"

एक साँस छोड़कर पण्डित गणेशदत्तने कहा, "यहाँ आकर और आपको कष्ट देकर बड़ा दुःख हुआ, मिश्रजी। आपके त्याग और धैर्यको धन्य है। प्रबोध मिश्रके पुत्र सिद्धनाथका आना-जाना हमारे परिवारमें एक युगसे है। हमारे सामने ही वह बच्चेसे बढ़ता हुआ आज ज्योतिष विद्याका पण्डित हो गया है। प्रायः ही बेटी तारा उससे कटु वादविवाद कर बैठती है। परिवारमें उसके इतना हिलामिला होनेसे पहले कभी इस बातका ध्यान ही नहीं आया। अब आप कहते हैं, तो सुविधासे उसके साथ चर्चा करूँगा। अच्छा, अब हम लोगोंको आज्ञा दीजिए।"

"अच्छी बात है," कट्टू मिश्रने कहा। "आपको इस कलहपूर्ण घरमें अब एक पल भी नहीं रोकूँगा। राजा बनारसे मेरा एक सन्देश भी कह दीजिए : इधर गाँवोंके लोगोंमें यवनोंके आक्रमणकी बहुत आशंका फैली हुई है। ग़ज़नीके महमूदका सेनापति सालार मसूद पहलेसे बहुत आगे बढ़ आया है। हो सकता है इस बातकी हलचल काशीकी कोलाहलपूर्ण नगरीमें न हो। किन्तु कभी-कभी भोले शंकरकी आँखोंमें मुझे विनाशके चिह्न दिखाई

पड़ते हैं। राजा बनार सावधान रहें, उनसे यह बार-बार आग्रह करके कह दीजिए। भूलिए नहीं।"

"अवश्य कहूँगा," पण्डित गणेशदत्तने कहा। "आप निश्चिन्त रहिए। अच्छा, अब...जी तो चाहता है कि आपके पैरोंकी धूल ले लूँ।"

कट्ठू मिश्रने तुरन्त उन्हें इस अशोभनीय कामसे वर्जित किया। "नहीं नहीं, यह पातक न कीजिए। जाइए, भगवान् विश्वनाथ आपको सुखी रखें।"

तीनों अतिथि प्रणाम करके बाहर आ गये। उनके रथके चले जानेके बाद कट्ठू मिश्रने अब तक निस्तब्ध खड़ी कन्याका हाथ पकड़कर अपने माथे पर रखा और तुरन्त हटाकर बोले, "लगता है कुछ ज्वर हो आया है। मैं आज केवल गरम पानीका सेवन करूँगा, बेटी।"

"हे भोले बाबा!" लड़कीने जल्दीसे अलक्ष्य शिवके प्रति हाथ जोड़े। फिर कट्ठू मिश्रको लक्ष्य करके बोली, "आपको एक सप्ताहमें यह तीसरी बार ज्वर हुआ है। आपसे कितनी बार कहा है कि इतने सवेरे उठकर, शिवालयमें जाकर न बैठा करें......पर आप मेरी नहीं सुनते हैं......इस तरह गरम पानी पी पी कर कब तक देह चलेगी?"

कट्ठू मिश्रके मुखपर उस दिन पहली बार सरल स्नेहमिश्रित मुसकान आई। बोले, "सब कुछ शिवके अर्पण है, बेटी। चिन्ता किस बातकी है? सब कुछ उनके तीसरे नेत्रमें समा जानेके लिए है......"

"अरे!" सहसा ही पार्वती बाहरकी ओर देखकर चिल्लाई। "ये जग्गू और भोला भैया कहाँको चले......।" और वह कट्ठू मिश्रको ज्यों-का-त्यों छोड़कर बाहरकी ओर भागी।

कुछ देर तक बाहरसे पार्वतीका तीव्र कोमल स्वर सुनाई पड़ा। उसके रोने का स्वर भी कट्ठू मिश्रके कानों तक आया। फिर वह भी लोप हो गया। छतकी ओर निहारते हुए मिश्र जी चुपचाप ठंडी साँसें लेते रहे।

मनकी वेदना बार बार ऊपर उभरकर आना चाहती थी, किन्तु शिवका ध्यान उसे जड़ कर देता था। अतीत और भविष्यके धुँधले चित्र उनकी आँखोंके सामने आ-जा रहे थे।

थोड़ा समय और बीता, जब कि पार्वती बाहरसे सुबकती हुई भीतर आई। आते ही कद्दू मिश्रके पैरोंपर गिरकर आँसू बहाती हुई वह बोली, "जग्गू और भोला भैया सिरपर गठरी रखकर कहीं चले गये, बाबा! उन्हें रोकिए तो सही।"

कद्दू मिश्रने उठकर उसके सिरपर हाथ रखा और सान्त्वनाके स्वरमें बोले, "तू क्यों रो रो कर गली जाती है, बेटी? वे दोनों काशीमें शास्त्रार्थ करके अपने जीवित पिताका श्राद्ध करने गये हैं।"

पार्वती रोती ही रही। कद्दू मिश्रका हाथ उसके सिरपर उस समय तक रखा रहा, जब तक वह चुप न हो गई। फिर एक उसाँसके साथ उनके मुँहसे निकला: "ऐसी ही शंकरकी इच्छा है।"

: प्रतिद्वन्द्वी :

काशीका महत्त्व है उसकी गलियोंमें । ये घूमघुमौवा गलियाँ युगों-युगोंसे उसी प्रकार सँकरी होती चली आई हैं, जिस प्रकार हमारे कट्टर दिमागोंके कूचे । धर्मपथके यात्रियोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके लिए उन कूचोंके छज्जे, दूकानें, सिलबट्टे दोनों किनारोंसे रह रहकर आगे सरक जाते हैं और वे कूचे और सँकरे हो जाते हैं ।

इन्हीं गलियोंकी खाक छानते हुए हमारे जगन्नाथ पण्डित और भोलानाथ पण्डितको दोपहरसे शाम हो गई । काशीमें जो लोग स्वर्ग पहुँच जाते हैं उन्हें बहुत जल्दी भुला दिया जाता है क्योंकि अन्य मुमुक्षुओंको स्वर्ग पहुँचानेकी जल्दी रहती है । अतः प्रबोध मिश्रके घरका पता आसानीसे लगनेवाला नहीं था, और जब लगा, तो हरिश्चन्द्र घाटके पास स्थित उस गलीमें अंधकार और भी घना हो गया था । हवेलीका द्वार छोटा-सा था और उस द्वारके ऊपर पर्याप्त ऊँचाई पर एक छोटी सी खिड़की बनी हुई थी । द्वारका बेंवड़ा भीतरसे बंद था ।

जगन्नाथ पण्डितने आवाज़ लगानेकी आवश्यकता न समझकर अपनी लाठीसे, जिसपर आवश्यक सामानकी गठरी लटकाये वह यहाँ तक आया था, किवाड़ोंको ज़ोरसे ठोंका ।

पुकारका उत्तर काशीमें बहुत जल्दी मिलता है । बिना परोपकारके वहाँ स्वयंके उपकारकी गुंजाइश नहीं । इस उद्दण्ड ठोंकेका उत्तर देनेके लिए द्वारके ऊपर बनी खिड़की तुरन्त खुल गई । किसी लंबी घुटी हुई चाँदने उसके बाहर सिर निकालकर तेज़ आवाज़में पूछा :

"कौन है रे !"

"हम हैं पण्डित जगन्नाथ और भोलानाथ, शास्त्र-चूड़ामणि, उपनिषद्-वेत्ता, वेदविद्याविशारद......"

"अरे, आप लोग कौन हैं?" ऊपरसे फिर उस व्यक्तिका तीव्र कर्ण-भेदी स्वर सुनाई पड़ा। प्रश्न करते ही उस आदमीने अपना सिर मोड़कर कान नीचेकी तरफ़ कर दिया और हाथको कानके ऊपर लगाकर संभावित उत्तरको इधर उधर वायुमें विसर्जित होनेसे रोकनेकी चेष्टा की।

भोलानाथने निराशाके भावसे अपने अग्रजकी ओर देखकर कहा, "यह आदमी तो निपट बहरा मालूम होता है। अपनी उपाधियोंका इसके कानों तक पहुँचना वैसा ही है, जैसे कैलाशवासी भोलानाथ तक किसी आतुर भक्तकी पुकारका पहुँचना।"

जगन्नाथने अपनी लाठी ऊपरकी ओर उठाकर एक हाथ मुँहसे लगाया और ओट बनाकर चिल्लाया : "रे वज्र मूर्ख, हम लोग उटाटरियासे पधारे हैं और प्रबोध मिश्रके पुत्र सिद्धनाथसे मिलना चाहते हैं।"

लाठी अपनी ओर उठते देखकर उस आदमीने अपना सिर ऊपरको उचकाया, जिससे वह तंग खिड़कीकी चौखटसे टकरा गया। अविलम्ब सिर झटकेके साथ नीचे आया। उसने दोनों पीड़क आगतोंको घूरा। फिर खिड़कीसे बाहर हाथ निकाल कर, उसने उनकी ओर मुट्ठी तान कर उन्हें धमकी दी, और भीतरकी ओर खिसककर लोप हो गया। खिड़की बन्द हो गई।

"हम जैसे महापण्डितोंका यह स्वागत तो कोई बहुत बढ़िया स्वागत नहीं है," भोलानाथने धीमे स्वरमें कहा।

उत्तरमें जगन्नाथने द्वार पर अनेक बार लाठीके ठोंके दिये। फिर बोला, "जिन पण्डितोंकी विद्वत्ताका भार स्वयं उनके मस्तिष्कके स्थान पर अनुचरोंको वहन करना पड़ता है वहाँ साक्षात् बृहस्पति भी पधारें, तो उनकी यही दुर्दशा होती है।"

भोलानाथ इस उत्तरसे संतुष्ट होने ही वाला था कि उसी समय उस ऊँची हवेलीके वे भारी द्वार चीखते-चरमराते खुल गये और उन दोनोंने देखा कि वही ऊपरवाला लम्बी खोपड़ीका मनुष्य हाथमें लाठी लिये खड़ा है। उसका रंग भुजंग था, ठोडीके नीचे तीन सलवटें पड़ी हुई थीं और नंगे बदन पर जनेऊके नाम तीन मोटी-मोटी सूतकी डोरियाँ थीं। शेष तन पर जगह-जगह मछलियाँ पड़ी हुई थीं। गरजकर उसने कहा, "चलो अखाड़ेमें।"

जगन्नाथ पण्डितने अचकचा कर उसे सिरसे पैर तक देखा। फिर बोला, "कैसे अखाड़ेकी बातें करता है? पण्डित सिद्धनाथ घरमें हैं?"

"हमको पण्डित सिद्धनाथकी आज्ञा है," उस आदमीने कहा, "कि काशीमें पहलवान एक रहेगा और वह होगा पहलवान गदाधर, बाकी सब उसके चेले। तुम दोनों एक साथ वार करना। हम एक ही चपेटमें तुम दोनोंको परमधाम पठा देंगे। पर तुम अपनी कहो। राजा बनारसे मुक्तिका आज्ञापत्र ले आये हो कि नहीं?"

पण्डितद्वयको स्वप्नमें भी यह आशा नहीं थी कि काशीमें शास्त्रार्थ करने आकर लाठ्यर्थ करना पड़ेगा। दोनों जन प्रतिद्वन्द्वीके तनको निहारते एक क्षण मौन रहे। फिर भोलानाथ पण्डितने आगे बढ़कर उच्चस्वरसे कहा, "अरे महाराज, तुम काशीमें सबसे बड़े पहलवान हो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। हमें तो यह बता दो कि यह घर प्रबोध मिश्रके पुत्र सिद्धनाथ का ही है ना?"

"सो तो है," उस आदमीने कहा, "पर तुम लोग लाठीको उचका-उचकाकर क्यों दिखा रहे थे?"

"अपने स्वरको लाठीके सहारे तुम्हारे कानों तक पहुँचानेके लिए," जगन्नाथ पण्डितने कहा। "तुम सुन जो नहीं रहे थे। हमें तुमसे द्वंद्व-युद्ध नहीं करना है। अपने स्वामीसे जाकर निवेदन करो कि उटाटरियासे महान्

शिवभक्त कट्टू मिश्रके पुत्र पण्डित जगन्नाथ तथा पण्डित भोलानाथ पधारे हैं ।"

बहुत ध्यानसे पहलवानने कानको उनके निमित्त अर्पित करके सन्देश सुना और यह जानकर कि वस्तुतः उसकी अर्जित संपत्ति पर उनका कोई दावा नहीं था, वह द्वारको पुनः बन्द करके लोप हो गया ।

जगन्नाथने फुसफुसाकर कहा, "भोलानाथ, चाहे सारी रात इसी देहरी पर बितानी पड़े, पर बिना सिद्धनाथको शास्त्रार्थमें पछाड़े मुझे चैन नहीं मिलेगा । तेरी इच्छा हो, तो तू..."

भोलानाथ तो पूरी बात सुननेका कभी अभ्यस्त ही नहीं था । बीचमें ही टोककर उसने कहा, "मेरा तो निश्चय था कि सिद्धनाथको शास्त्रार्थमें ही नहीं, अखाड़ेमें भी पछाड़ूँ.—मगर क्या पता था कि इस मुस्टंडको उसने घरमें नौकर रख रखा है ।"

उसी समय फिर द्वार खुले और पहलवानकी मूर्त्ति दिखाई पड़ी । कड़कदार स्वरमें उसने कहा, "चलो भीतर ।"

इन दो शब्दोंसे पण्डित जगन्नाथको बड़ी हीनता अनुभव हुई । किन्तु सुविधाके विचारसे वह चुप रहा । भोलानाथको भीतर पग रखते हुए ऐसा लगा मानो साक्षात् यम उसे अपने बड़े भाई समेत महाकालकी कोठरीमें बरबस ले जा रहा हो ।

भीतरका मकान भी काशीकी गलियोंसे कम चक्करदार नहीं था । भीतर एक विस्तृत चौक अवश्य था, जिसमें दो दीपक टिमटिमा रहे थे । उन्हींमें से भोलानाथने एकको उठा लिया क्योंकि उनका पथप्रदर्शक जिस प्रकार उस मकानके अंधेरेमें देख सकता था उस प्रकार देखनेमें नवागत बिलकुल असमर्थ थे ।

सीढ़ियाँ चढ़ कर ये लोग ऊपर पहुँचे और एक कटहरेका फेरा लगा कर एक अँधेरे कक्षमें पहुँचे । सबसे पीछे भोलानाथ हाथमें दीपक लिये

था। वह अभी भीतर घुसा भी नहीं था कि सहसा ही जगन्नाथ बाहर निकल आया और स्वरको संयत रखनेकी चेष्टा करता हुआ बोला, "लौट चलो, भोलानाथ। यह पण्डित सिद्धनाथका घर प्रतीत नहीं होता।"

"क्यों, क्या बात है?" भोलानाथने अचरजसे पूछा।

"भीतर अंधेरेमें साँपकी मणिकी तरह दो मणियाँ चमक रही हैं और गुर्राहटकी आवाज़ आती है...... !"

"चले आओ," भीतरसे उसी पहलवानका कर्कश स्वर सुनाई पड़ा।

"चलें तो सही," भोलानाथने कहा। "कोई खा थोड़े ही जायगा। मरना तो है ही। काशीमें मरे, तो मोक्षलाभ होगा। चलो।"

दोनों भाई सावधानीके साथ भीतर पहुँच गये। दीपकके क्षीण प्रकाशमें आशंकापूर्ण दृष्टिसे उन दोनोंने उस ओर देखा, जिधरसे गुर्रानेका स्वर आ रहा था, और दो मणियाँ चमक रही थीं।

एक मोटी, झबरैली, काली बिल्ली उस स्थान पर बैठी थी। कनौतियाँ हिल रही थीं और वह क्रुद्ध दृष्टिसे आगंतुकोंकी ओर ताक रही थी। इन लोगोंको अपनी ओर इस प्रकार देखते देख कर उसने दाँत निकाले और अधिक तेज़ी से गुर्राई।

सहमकर जगन्नाथ और भोलानाथ पीछेकी ओर हटे। पहलवान बीच कक्षमें पहुँचकर अटक गया था। उसको लक्ष्य करके जगन्नाथने पूछा, "यह क्या है?"

"यह," उस आदमीने बिल्लीको देखकर दाँत निपोरते हुए कहा, "यह तो तारा है।"

"पण्डित सिद्धनाथ कहाँ हैं?" जगन्नाथने ताराकी ओरसे ध्यान हटानेकी चेष्टा करते हुए पूछा।

"पण्डितजी अभी स्वाध्याय कर रहे हैं। आप लोग तब तक इस तख्त पर आराम कीजिए। अभी घड़ी भरमें आ जायँगे," कहकर पण्डित

सिद्धनाथका अनुचर बाहर जाने लगा, तो भोलानाथने उसका जनेऊ थाम कर कहा, "बाबा, इस महाभागाको भी अपने साथ लेते जाइए। जब तक पण्डित सिद्धनाथ स्वाध्याय करके आयँगे, तब तक तो यह बिलारी हम लोगोंको खा जायगी!"

वह व्यक्ति बिना कुछ बोले ही उस बिल्लीके पास गया और उसका नाम लेकर कुछ संकेत किया। वह कूदकर उसके कंधे पर चढ़ गई। उसे कंधे पर लिये लिये वह कक्ष छोड़कर बाहर चला गया।

दोनों शास्त्रार्थी भ्रातागण लम्बी-लम्बी निःश्वासें छोड़ते हुए उस तख्तकी ओर बढ़े, जिस पर बैठनेका संकेत उनके वास्तविक प्रतिद्वंद्वीका अनुचर कर गया था।

कुछ देर बाद वह व्यक्ति दो चाँदीकी तेज़ मशालें लिये कक्षमें आया। अब उसके कंधेपर वह बिल्ली नहीं थी। चुपचाप दोनों मशालें यथास्थान लगाकर वह फिर वापस चला गया। उस समय भोलानाथने पहली बार बड़े भाईको याद दिलाया कि उन लोगोंने आज सारे दिन भोजन प्राप्त नहीं किया था।

जगन्नाथ उत्तरमें कुछ कहने ही वाला था कि गदाधर पहलवान फिर कमरेमें आया और सीधा खड़ा होकर उसने आगतोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया :

"स्वामी उपस्थित हैं, महाराज।" उसने कमरेकी पीछे वाली उस दीवारकी ओर संकेत किया, जो पहले साफ़ और चिकनी नज़र आई थी।

दोनों पण्डितोंने अपने आसनों पर डटे हुए ही पीछेकी दीवार की ओर देखा। उसमें अब एक दरवाज़ा दिखाई दिया। उस दरवाज़ेमें एक सबल, गोराचिट्टा युवक कन्धे पर चादर और पैरोंमें पण्डिताई तहमत पहने खड़ा था। दोनों ही वस्त्र बिलकुल सफ़ेद थे। युवकके कंधे पर वही बिल्ली बैठी थी और दोनों प्राणी एकाग्रतासे आगन्तुकोंको निहार रहे थे।

युवककी मुद्रा गम्भीर थी। होंठों और माथेकी सिकुड़नोंसे प्रतीत होता था कि वह या तो अत्यन्त तल्लीनतासे आगतोंको निरख-परख रहा है या उसके बाद जो भाव आना चाहिए था वह धारण कर चुका है। किन्तु जब आगतों की दृष्टि उस ओर फिरी, तो वह भाव सहसा ही लोप हो गया। एक मृदुल मुसकानके साथ उसने दोनों हाथ उठा कर जोड़े :

"करवन्दना, बन्धुओ। पता लगा है कि आप परम त्यागी पण्डित कद्दू मिश्रके सुपुत्र हैं।"

दोनों पण्डितोंने शीघ्रतासे गरदन हिलाकर वंदनाका उत्तर देते हुए किसी प्रकार अपनी ऊँचाई बनाये रखी। मेज़बान यदि किसी के पुत्र होनेके नाते ही मेहमानोंका सत्कार करे, तो इससे ऊँचाई घटती ही है। जगन्नाथने भी उत्तरमें कहा, "क्या हम लोग स्वर्गीय पण्डित प्रबोध मिश्रके पुत्र सिद्धनाथके समक्ष हैं?"

युवक हँसता हुआ मस्त चालसे आगे बढ़ा और उसके अनुचरने पीठिका उठा ली। आगतोंकी दाहिनी ओर सिद्धनाथ जा कर खड़ा हो गया। अनुचरने वहीं पर वह पीठिका रख दी, जो उस तख्तसे ज़रा ऊँची थी, जिस पर मिश्रपुत्र बैठे थे।

सन्तोषके साथ बैठकर सिद्धनाथने कहा, "मेरा नाम सिद्धनाथ है, आपका यह अनुमान सही है। मुझे महापण्डित प्रबोध मिश्रका पुत्र होनेका सम्मान प्राप्त हुआ है यह भी सही है।"

भोलानाथने 'सम्मान' शब्दसे चिढ़कर पूछा, "आपने जो यह बिल्ली पाल रखी है, क्या यह भी किसी सम्मानकी सूचक है?"

"हाँ," सिद्धनाथने कहा। "आपने सम्भवतः इस महाभाग्यशालिनीका नाम नहीं सुना?"

"इस आदमीने इसे तारा कहकर पुकारा था," भोलानाथने कहा।

"तब महापण्डित कद्दू मिश्रने धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा देते हुए आप

लोगोंको बताया होगा कि तारा देवताओंके गुरु बृहस्पति महाराजकी पत्नीका नाम है। समस्त संसारकी बुद्धिके नियन्ता देवगुरु बृहस्पति हैं। किंतु स्वयं देवगुरुकी बुद्धिकी नियन्ता भी कोई होनी ही चाहिए। उसी प्रकार मेरी बुद्धिकी नियंता यदि कोई इस समय है, तो वह यह......"

जगन्नाथ पण्डित सहसा ही क्रोधित हो, जनेऊ सँभालते हुए तख़्तसे उतर पड़ा और तीव्र स्वरमें बोला, "तुम......तुम देवताओंके गुरु बृहस्पति महाराजका अपमान करते हो ! तुम कैसे पण्डित हो !"

"बैठिए, महाशय, बैठिए," सिद्धनाथ बोला। "यही बात, जो आपने उत्तेजित होकर कही है, शान्तिके साथ भी कही जा सकती थी।"

जगन्नाथ न भी बैठता, किन्तु उस बिलारीने फिर गुर्राना शुरू कर दिया, और जगन्नाथको बैठना ही पड़ा। मगर उसने पाँवोंको नीचे ही लटकाये रखा।

सिद्धनाथने कहा, "इस महाभागाका नाम तारा रखनेसे किसी प्रकार देवगुरु बृहस्पतिका अपमान होता है यह तो आपके मस्तिष्ककी उपज है। मेरे विनम्र मतानुसार इससे देवगुरु बृहस्पतिका सही मूल्यांकन होता है। आचार शास्त्रोंमें काली बिल्ली अपशकुनकी सूचक है न ?"

"है," जगन्नाथने उसी स्वरमें कहा, "तो फिर ?"

"और कहींपर गमन करना अत्यावश्यक तथा पूर्ण रूपेण बुद्धिसंगत होते हुए भी आप अपशकुनके विचारसे जाना स्थगित कर देते हैं। उस समय आप अपनी बुद्धिकी प्रेरणाको नहीं मानते।"

"फिर ?" जगन्नाथ नथुने फुलाते हुए बोला।

"तो फिर एक परम अपशकुनको सदा साथ रखनेसे आपकी बुद्धिका यह अवरोध जाता रहेगा। आपका मार्ग सदा साफ़ रहेगा।"

"किस प्रकार ?" जगन्नाथने गरजकर पूछा।

"उसी प्रकार, जैसे निविड़ अन्धकारको अन्धकार नहीं ग्रस सकता,

काले रंग पर कोई और रंग नहीं चढ़ सकता, देवगुरु बृहस्पतिकी बुद्धिको उनकी भार्या ताराके अतिरिक्त कोई स्त्री नियन्त्रित नहीं कर सकती। महर्षि पतंजलिके अनुसार बुद्धि विकारका चिह्न है न।' अतः उस विकारको सोख लेनेके लिए तारा नामकी एक काली बिल्ली अत्यन्त उपयोगी जीव है।"

"पण्डित सिद्धनाथ," इस बार भोलानाथने आगे गरदन करते हुए कहा, "हम दोनों पण्डित तुम्हारे साथ एक सार्वजनिक सभामें शास्त्रार्थ करनेके उद्देश्यसे पधारे हैं। उस समय तुम्हारे इस वितण्डावादकी सारी पोलपट्टी खुलेगी।"

"अहोभाग्य!" सिद्धनाथने और भी नम्र होते हुए सरल वाणीमें कहा, "मेरे साथ आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, इससे सिद्ध होता है कि आप लोग मुझ दीन व्यक्तिको अपनेसे भी बड़ा पण्डित मानते हैं, और उस बड़ाईको समतल करना ही आपका लक्ष्य है।"

जगन्नाथने कहा, "यदि तुम शास्त्रार्थके समय तक अपनेको बड़ा पण्डित माननेमें प्रसन्न हो, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु तुम्हारी इस कथित महत्ताको नष्ट करके काशीमें अपनी महत्ता स्थापित करनेका ही हमारा लक्ष्य है।"

सिद्धनाथने बिल्लीको कन्धे परसे उतार कर अपनी गोदमें लेते हुए कहा, "इस प्रकार भी आपका लक्ष्य पूरा नहीं हो सकेगा, बन्धुओ। कारण यह है कि मैं काशी महानगरीमें एक बहुत ही क्षुद्र जीव हूँ। मेरी कोई ख्याति यहाँ पर फैली हुई नहीं है। यहाँ तक कि मेरे निवास-स्थानका पता लगानेमें भी आपको कम-से-कम एक दिन काशीकी गलियोंकी खाक छाननी पड़ी होगी यह भी कोई संदेहका विषय नहीं। तब किस प्रकार आप लोगों की महत्ता स्थापित करनेमें यह अकिञ्चन योगदान दे सकता है उस उपायको भली प्रकार निश्चित कीजिए।"

भोलानाथने कहा, "तब तो मालूम पड़ता है कि तुम अज्ञानी ही नहीं हो, कायर भी हो।"

उत्तेजित होनेके स्थान पर सिद्धनाथ ठठाकर हँस पड़ा। उसकी गोदमें बैठी बिल्लीने पहले उसकी सूरतको देखा, फिर दाँत निकालकर गुर्राई। द्वारके पास खड़ा गदाधर अविचल ही बना रहा। सिद्धनाथने कहा, "प्रिय भाइयो, आप लोग मुझे उत्तेजित करके मुझसे सार्वजनिक रूपसे शास्त्रार्थ करने पर तुले हैं, इसमें अवश्य ही आप लोगोंकी कोई गुप्त अभिसंधि है।"

"हमारा इससे क्या लाभ हो सकता है?" भोलानाथने उसे भुलावा देना चाहा।

"यही तो मैं सोच रहा हूँ," सिद्धनाथने कहा। "शास्त्रार्थमें यदि आप लोग हार गये, तो निश्चय ही मुझे दुःख होगा क्योंकि जब तक शत्रुताका कोई स्पष्ट कारण न हो, तब तक किसी क्षुद्रसे क्षुद्र जीवके साथ मेरी मित्रता स्थापित रहती है। और यदि किसी कारण शास्त्रार्थमें मैं हार गया, तो मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि इससे आप लोगोंको क्या प्रत्यक्ष लाभ पहुँच सकता है। इसके अर्थ हैं कि कोई परोक्ष लाभ आप लोगोंको इससे पहुँचेगा। कृपा करके वह बतानेका कष्ट कीजिए, जिससे अपनी शक्तिके अनुसार मैं भी आप जैसे मित्रोंके उस असाध्य साधनमें योग दे सकूँ।"

अब बताना ही होगा इस भावसे जगन्नाथने अपने अनुजकी ओर देखा। इस व्यक्तिको व्यर्थ ही शास्त्रार्थमें नहीं घसीटा जा सकता यह दोनों ही भाई समझ चुके थे। अन्तमें जगन्नाथने कहा, "आप राज-पण्डित गणेशदत्तको जानते हैं?"

"निश्चय ही मैं राज्यके प्रायः सभी मुख्य पुरुषोंसे परिचित हूँ," सिद्धनाथने कहा।

"तब यह भी जानते होंगे कि पण्डित गणेशदत्त एक विदुषी कन्याके पिता हैं?" भोलानाथने पूछा।

"जानना आवश्यक तो नहीं, किन्तु संयोगसे मैं उससे भी परिचित हूँ......क्या आपका यह अर्थ है कि वह उसी व्यक्तिको अपना पाणिदान

करनेका सौभाग्य प्रदान करेगी, जो सार्वजनिक शास्त्रार्थमें विजयी होगा ? क्या सचमुच उसने ऐसा निश्चय किया है ?"

"पूर्ण सत्य तो यह नहीं है, किन्तु स्थिति लगभग ऐसी ही आ पड़ी है," भोलानाथने संकोचके साथ रुकते-रुकते कहा।

इस पर सिद्धनाथ बड़े ज़ोरसे खिलखिलाकर हँसा। बिल्ली फिर कूदकर उसके कंधेपर चढ़कर बैठ गई। जब सिद्धनाथकी हँसी रुकी, तो उसने देखा कि दोनों आगत उसकी ओर आश्चर्यकी दृष्टिसे देख रहे हैं।

"बन्धुओ," सिद्धनाथ हँसते-हँसते बोला, "अब शास्त्रार्थ करनेकी किञ्चित् भी आवश्यकता नहीं है। सिद्धनाथ आप लोगोंको वचन देता है कि आपके जीते जी वह उस विदुषीको अपनी अर्द्धांगिनी नहीं बनायगा।"

जगन्नाथ और भोलानाथ दोनोंकी भौंहें आश्चर्यसे माथेपर चढ़ गईं। जगन्नाथने कुछ सुस्थिर होकर कहा, "आपके कथनसे ऐसा भास होता है कि पण्डित गणेशदत्तकी इस विदुषी कन्यामें अवश्य ही कोई ऐसा खोट है, जो आप जैसे विद्वान् पुरुषके लिए विरक्तिका कारण बना हुआ है....."

सिद्धनाथके मुखपर अब स्थायी रूपसे मुसकराहट आ गई थी। उसने अत्यन्त धीरताके साथ बातका आनन्द लेते हुए कहा, "इसके विपरीत, उसको मैं इसीलिए पत्नीके रूपमें ग्रहण करनेको तत्पर नहीं हूँ कि उसमें कोई दोष नहीं है।"

"फिर यह कैसे सम्भव है कि आपको एक सर्वथा निर्दोष कन्या पत्नी रूपमें मिले और आप उस अवसरको त्याग दें ?" भोलानाथने पूछा।

"यह उसी प्रकार सम्भव है, जिस प्रकार भारत-जैसे विशाल देशपर महमूद ग़ज़नवीका आक्रमण होना और रामके देशमें पहुँचकर सीता सहित रावणका सकुशल बच निकलना," सिद्धनाथने कहा।

यह सर्वथा अप्रासङ्गिक बात सुनकर दोनों ही पण्डितबन्धु एक-

दूसरेकी ओर देखते रह गये। पण्डित जगन्नाथने कहा, "यह तो हमलोगोंके प्रश्नका उत्तर नहीं हुआ, महाशय।"

"यह उत्तर आप जैसे महापण्डितोंके लिए सर्वथा उपयुक्त है,' सिद्धनाथने बिल्लीको फिर गोदीमें उतारकर उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "क्योंकि आपके सम्मुख केवल कन्याके निर्दोष होनेका ही प्रश्न है। किन्तु यदि आपके मनमें भी यह आशंका बैठ जाय कि विवाह करनेके बाद आपकी प्रिय पत्नीको यवन लोग दासी बनाकर ग़ज़नी ले जायँगे, तो मेरा यह पुष्ट विचार है कि आप लोग स्वयं भी निर्दोष होनेकी प्राणपणसे चेष्टा करेंगे—व्यर्थ ही किसी ग़रीब सिद्धनाथको सार्वजनिक शास्त्रार्थमें घसीटनेके लिए इस प्रकार रात्रिमें कष्ट लाभ नहीं करेंगे।"

सिद्धनाथकी बातोंसे दोनों पण्डितबन्धु हतप्रभसे हो गये। आँखें टिमकाकर भोलानाथने पूछा, "आपसे यह किसने कहा कि हम लोगोंके विवाह करते ही यवन लोग हमारे ऊपर यह अत्याचार......?"

"आप चिन्ता मत कीजिए," सिद्धनाथने उसकी बातको बीचमें ही काटकर कहा, "किसी प्राचीन शास्त्रमें यह नहीं लिखा है कि अमुक वर्षके अमुक दिन यवन काशीमें आकर पतितपावनी गंगामें डुबकी लगायँगे। यह तो चेदिकुलशिरोमणि महाराज गाङ्गेयदेवके कुछ सभासदोंका विचार है कि अतिप्राचीन कालमें, आकाशसे गमन करते हुए जगन्माता पार्वतीका जो मूल्यवान कुण्डल मणिकर्णिका घाटपर खो गया था और लाख खोजने पर भी शिवजीको नहीं मिला था, उसे ही ढूँढ़नेके लिए नरकवासी महमूदका सेनापति सालार मसूद ग़ाज़ी गंगामें ग़ोता लगायगा, और यदि वह भी शिवजीकी भाँति कृतकार्य न हुआ, तो काशी महानगरीकी समस्त ललनाओंके कर्णफूल और माथेकी माँग झटके देकर खींच ले जायगा।"

सिद्धनाथने जिस ढंगसे यह बात कही उससे दोनों ही शास्त्रार्थियोंके कलेजे दहल गये। जगन्नाथका दायाँ हाथ बायें हाथके अँगूठेमें जनेऊकी

डोरी लपेटने-उधेड़ने लगा। भोलानाथको लगा कि वे लोग भूलसे, किसी शास्त्रार्थके प्रतिद्वन्द्वीके स्थानपर, एक ऐसे क्रुद्ध बिलाऊके सामने पड़ गये हैं, जो इस लोकके लिए सर्वथा अपरिचित, खूंखार नारकीय चूहोंकी सेना-पर आशंका, उद्वेग, क्रूरता और संहारकी दृष्टि लगाये बैठा है। साथ ही कक्षका वातावरण पहलेसे ही पर्याप्त रहस्यपूर्ण और डरावना-सा लग रहा था। सिद्धनाथकी गोदीसे काली बिल्ली उतरकर एक दूसरी चौकीपर आक्र-मणात्मक मुद्रामें स्थिर हो गई थी। मशालोंका प्रकाश सिद्धनाथके पीछे खड़े गदाधरके शरीरकी चिकनाई प्रकट कर रहा था। स्वयं सिद्धनाथ तीव्र दृष्टिसे उन दोनोंकी ओर बारी-बारीसे देख रहा था।

सहसा ही घबराकर सिद्धनाथके दोनों प्रतिद्वन्द्वी पण्डितजन उठ खड़े हुए और जगन्नाथने कहा, "आप बड़े रहस्यमय व्यक्ति लगते हैं। हम लोगोंने बड़ी भूल की, जो आपसे शास्त्रार्थ करनेका विचार किया। हम लोगोंको अब आज्ञा दीजिए।"

सिद्धनाथने कहा, "जाइए, आप लोगोंको इसीलिए भूखे भेज रहा हूँ कि आप सारी रात जागकर विचार करें, और जब सबेरा हो, तो कलेवेके स्थानपर उन लोगोंके दिमागोंको चाटें, जो लघुकौमुदी, वेदान्त और पौष्टाचार्यके श्लोक रट-रट कर, गंगाके पानीमें गले तक खड़े होकर, कुमारियोंको जल्दी से जल्दी विधवाओंके रूपमें परिवर्त्तित करनेका संकल्प करते हैं।" फिर उसने उसी रूपमें बैठे-बैठे तीव्र स्वरमें कहा, "गदाधर!"

"हाँ, स्वामी," गदाधरने एक पग आगे बढ़कर एक सच्चे सैनिककी भाँति अपने उपस्थित होने की सूचना दी।

"इन पण्डितोंको सकुशल पण्डित गणेशदत्तके घर छोड़ आओ।"

"ऐसा ही होगा, स्वामी," गदाधरने सिर झुकाकर कहा।

स्वप्नचालितकी भाँति दोनों भाई गदाधरके विशाल और पुष्ट शरीरके पीछे सिद्धनाथके घरसे बाहर निकले।

: राजपुरोहितकी कन्या :

सिद्धनाथके घरसे निकलकर जब दोनों भाई गदाधर भटका अनुगमन करते काफी दूर पहुँच लिये, तब जगन्नाथको यह विचार आया कि आजके दिन उनका पण्डित गणेशदत्तके घर जाना उचित नहीं था क्योंकि आज ही तो उन्होंने स्वयं उन लोगोंके घर उनका अवांछनीय व्यवहार देखा था ! सिद्धनाथसे उन्होंने पण्डित गणेशदत्तके घर जानेकी चर्चा की हो, ऐसा भी उन्हें याद नहीं आया। फिर, कुछ समझ नहीं पड़ा कि उस आदमीने क्यों इस विकट भटको पण्डित गणेशदत्तके घर तक पथप्रदर्शक बनाकर भेजा है।

उन दोनोंने आपसमें कुछ सलाह-मशवरा किया और भोलानाथने उच्च स्वरसे गदाधरको लक्ष्य करके कहा, "अब तुम अपने घर लौट जाओ, भाई। हम लोग चले जायँगे।"

गदाधरने इसके उत्तरमें कुछ कहनेकी अपेक्षा अपनी स्थिति बदल डाली। वह आगे चलनेके स्थानपर उन लोगोंके पीछे हो गया। उसका यह व्यवहार देखकर जब दोनों भाई रुक गये, तो उसने दोनों हाथोंसे उन्हें ठेलकर आगे बढ़नेका संकेत किया।

भोलानाथ वहीं जमकर खड़ा हो गया और बोला, "जब हम उस स्थानपर नहीं जाना चाहते, जहाँ तुम ले जा रहे हो, तो तुम्हें क्या अधिकार है कि हमें पशुओंकी तरह हाँको ?"

गदाधरने आँखें निकालकर अपनी मशाल ऊपर उठाई और उसे घूरकर बोला, "अब चुपचाप चले चलो; मार्गमें विवाद न करो। स्वामीने

जहाँके लिए कह दिया है वहाँ पहुँचाये बिना मेरा वापस लौटना असम्भव है।"

दोनोंने हैरतसे पहले एक दूसरेको, फिर अपने इस विचित्र पथ-प्रदर्शकको देखा। जगन्नाथको लगा कि सिद्धनाथके घरसे निकलकर भी वे अब तक उसीके अधिकारमें हैं, और यह बहरा पहलवान जब तक उन्हें गन्तव्य स्थान तक पहुँचा नहीं देगा, तब तक काम पूरा करनेके लिए आकाश-पाताल एक कर देगा। फिर रातको उन्हें कहीं-न-कहीं विश्राम करना ही है। चलो, जो भी हो जाय अब तो वही भला है।

अनेक चक्करदार गलियोंमें आधा घण्टा चलकर व्यतीत करनेके बाद ये तीनों व्यक्ति पण्डित गणेशदत्तके घरके सामने पहुँचे। गदाधरने कर्णभेदी स्वरमें राजपुरोहितको पुकारा।

द्वार खुला और गदाधरने मशाल ऊपर की। उसके प्रकाशमें जगन्नाथने देखा कि एक युवती दरवाजेके पल्लोंपर दोनों हाथ रखे खड़ी हँस रही थी। पैरोंमें घुँघरू बँधे थे, कानोंमें मोतियोंके श्वेत कुण्डल थे, वक्षपर कञ्चुक कसा था, अन्तरवासकके ऊपर झालरदार करधनी थी, कलाइयोंमें मोटी-मोटी चूड़ियाँ और बाहुओंपर बाजूबन्द थे, जिनके फूलदार डोरे दोनों बाहुओंसे नीचे लटक रहे थे। गलेमें मणिमाला थी।

जगन्नाथ इस सज्जाको आँखें फाड़े देखता रह गया। युवतीने हँस कर कहा, "तुम लोग इतनी देरसे आये हो! सारा नाटक तो समाप्त हो गया है। अब कल आना..." और यह कह कर वह फिर से द्वार बन्द करनेको हुई।

गदाधरने कहा, "मैं गदाधर हूँ।" शायद उसने सोचा था कि उसका परिचय माँगा जा रहा है।

युवतीने हाथ हिला कर कहा, "तुम गदाधर हो, तो इससे क्या?"

"स्वामीने मुझे इन दोनोंको यहाँ पहुँचानेके लिए भेजा है," गदाधरने उत्तर दिया।

"अरे!" युवतीने आश्चर्यसे कहा, "कहा तो है कि कल आना।"

"इन्हें सम्भालो," गदाधर बोला, "मैं चला।" इतना कह कर वह लौट कर दो-चार पग चला। फिर घूम कर बोला "इन लोगोंको द्वारके भीतर करके ही जाऊँगा। इनका कुछ भरोसा नहीं।"

भोलानाथके लिए उस साधारण युवतीमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं था। अप्रभावित स्वरमें वह बोला, "हम लोग उग्गटरियासे पधारे हैं..."

"ओह! उग्गटरियासे आये हैं!" युवतीने अपने नर्त्तकीसुलभ वेशसे स्वयं ही प्रभावित हो कर मटकते हुए कहा। "इतनी दूरसे आनेकी क्या आवश्यकता थी? दो द्वारपाल बनाने थे, सो हम तो यहींसे किन्हीं दो मूर्खोंको पकड़ लेते...अब आ ही गये हो, तो ठहर जाओ। मैं पिताजीसे पूछ कर बताती हूँ कि तुम लोगोंका क्या किया जाय..." और इससे पहले कि भोलानाथ कुछ कहे, वह अन्तर्द्धान हो गई।

द्वार खुला ही रह गया था। गदाधरने समझा कि उन लोगोंको भीतर आनेका सकेत करके वह पीछे हट गई है। अतः उसने दोनोंको पीठकी तरफसे आगे धकेलते हुए कहा, "अब चले जाओ भीतर। तुम लोगोंको बिना ठिकानेपर पहुँचाये स्वामीके कोपसे छुटकारा नहीं है।"

उस विशालकाय मनुष्यके सामने ब्राह्मण-बन्धुओंके पुष्ट शरीर भी बच्चों जैसे लग रहे थे। उसके द्वारा और अधिक अपमानित होनेकी कामना न करके, वे लोग स्वयं ही तेज़ीसे आगे बढ़ कर द्वारके भीतर हो गये। मगर गदाधरने इसीसे सन्तोष नहीं किया। उसने बाहरसे द्वार बन्द करके कुण्डी लगा दी और वापस अपने घरकी राह ली।

दोनों भाई उस समय तक अन्धेरेमें ही खड़े रहे जब तक कि एक ओरसे आते प्रकाशकी किरण उन्हें न दिखाई दी। कुछ ही क्षणोंमें उस

रास्तेसे पण्डित गणेशदत्त स्वयं आते हुए दिखाई पड़े। इस बार उनकी चपल कन्या उछलती कूदती नहीं आ रही थी, बल्कि सकुचाई हुई सी, उनके आकारके पीछे अदृष्ट थी। केवल इधर-उधरसे, जब तब कोई अंग दिखाई पड़ जाता था।

पण्डित गणेशदत्तने दूरसे ही कहा, "आओ, बेटा जगन्नाथ, आ जाओ। हम तो संध्यासे ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रबोध मिश्रके उस लड़केसे कह आया था कि आते ही तुम लोगोंको यहाँ भेज दे...अपना ही घर है, बेटा, आओ..."

भले लड़कोंकी तरह जगन्नाथ और भोलानाथने हाथ जोड़ कर नमस्कार किये। अब उन लोगोंकी समझमें आ गई थी कि क्यों सिद्धनाथने उन लोगोंको प्रत्यंचापर चढ़ा कर यहाँ पठा दिया था। जब तक वे दिन भर काशीकी गलियोंके चक्कर काटते रहे, पण्डित गणेशदत्त काशीमें आ कर सिद्धनाथसे मिल भी लिये, और इन दोनोंको यहाँ भेजनेका निर्देश भी दे आये।

जगन्नाथ तो अपनी स्थितिसे सकुचाया हुआ था, मगर भोलानाथने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। उसने हँसते हुए कहा, "तभी उसने एक भूत सा अनुचर हम लोगोंके साथ कर दिया था। उसने जब तक हम दोनोंको द्वारके भीतर धकेल नहीं दिया, तब तक पिण्ड नहीं छोड़ा...देखिए तो देवका देव था।"

उन लोगोंको साथ ले कर लौटते हुए पण्डित गणेशदत्तने कहा, "हाँ, हाँ, उसका नाम गदाधर किसीने उपयुक्त ही रखा था।"

लड़की, जो कुछ देर पहले चञ्चल दिखाई देती थी, अब सौम्य मुद्रा धारण कर चुकी थी। उसने कहा, "पिताजी, वही यदि भैरवानन्दका अभिनय करे, तो महाराज उछल पड़ेंगे।"

पण्डित गणेशदत्त चलते-चलते खड़े हो गये। ठोडीपर हाथ रख कर वह विचार करते हुए बोले, "अरे पुत्री, तेरी दृष्टि तो बहुत तीव्र है!" फिर जगन्नाथकी ओर देख'कर उन्होंने कहा, "लो देखो, मैंने भी उसे देखा था, पर मुझे ख्याल ही नहीं आया। जब इसने भीतर जा कर बताया कि द्वारपालोंका अभिनय करनेके लिए विशालकाय गदाधर दो आदमियोंको पकड़ लाया है, तब भी तो ख्याल नहीं आया।"

उस लड़कीने उन लोगोंको द्वारपाल समझा था यह जानकर भोलानाथको कोई उत्साह नहीं हुआ। वह कहनेको ही था कि क्या वे लोग द्वारपालसे लगते हैं कि उस लड़कीने हँसकर कहा : "पिताजी, मेरा यह विचार इन लोगोंको देखकर नहीं, उस मूढ़की आकृतिको देखकर हुआ था। इस विचारके लिए मैं आगतोंसे क्षमा चाहती हूँ।" और उसने मुसकराकर भोलानाथकी ओर देखा, जिसकी मुद्राको वह भाँप चुकी थी।

"देखा, देखा?" पण्डित गणेशदत्त बोले, "कितनी कुशाग्रबुद्धि है यह! महामुनि शंकराचार्यका एक भाष्य इसने कण्ठस्थ कर रखा है।"

देहलीज़ पार करके ये लोग अब भीतर आ गये थे, जहाँ बहुत बड़ा चौक था। वहीं पर एक चार दरवाज़े वाले कोठेमें पण्डित गणेशदत्तके दोनों शिष्य एक बड़े सिलबट्टे पर दोनों ओरसे घोटा लगा रहे थे। उन्होंने एक नज़र ऊपर उठाकर लोगोंकी ओर देखा, और फिर अपने काममें मँढ़ गये।

कन्धों पर अँगोछा डाले इधर-उधर दो-चार व्यक्ति प्रायः नङ्गे बदन अन्य कामोंमें व्यस्त दिखाई दिये। एक कोठेकी ओर जाते हुए पण्डित गणेशदत्तने अपनी कन्याकी ओर लक्ष्य करके कहा, "बेटी तारा, इन लोगोंसे कहकर जल्दी भोजन तैयार कराओ और ये आभूषण अब उतार दो। इनकी आवश्यकता नहीं है।"

तारा! भोलानाथ और जगन्नाथ दोनोंके कान इस एक शब्दको सुन-

कर तृप्त हो गये। अभी वे लोग सिद्धनाथके यहाँ एक तारासे निबटकर आ रहे थे। मगर रूपान्तरसे वह यहाँ भी मौजूद है!

अपने बैठने-उठनेके कोठेमें उन लोगोंको ले जाते हुए पण्डित गणेशदत्तने कहा, "अभी परसों महाराजकी रंगशालामें कशमीरके राजकवि पण्डित राजशेखरका नाटक कर्पूरमञ्जरी अभिनीत होगा। कशमीरके नरपतिने उसकी एक प्रति विशेष रूपसे काशीराजके लिए लिखवाकर भेजी है। अभी पिछली शताब्दीका नाटक है, पर लोकमें उसकी चर्चा है। नायिकाका अभिनय तारा ही करेगी। यह प्राकृत बहुत साफ़ बोलती है। महाराजने अन्य अभिनेताओंको तैयार करनेका भार भी हमारे ऊपर छोड़ दिया है।

"वह नाटक मैंने नहीं देखा," जगन्नाथने कहा।

"तब देखना, बहुत सुन्दर है। ऐसा कुतूहल दिया है कि आनन्द आ गया। बल्कि तुम कहो, तो तुम्हारे लिए भी एक भूमिका..."

भोलानाथ बीचमें ही प्रसन्न होकर बोला, "यह ठीक रहेगा।"

जगन्नाथने उसकी ओर कड़ी दृष्टिसे देखा। वह स्वयं यह जाननेके लिए उत्सुक था कि इस धनी राजपुरोहितसे सिद्धनाथकी क्या-क्या बातें हुई हैं। किसी प्रकार बातचीतका प्रसंग उस ओर आ सके वह इसीके लिए चेष्टा कर रहा था। तारा भी इस समय उन लोगोंके साथ नहीं लगी हुई थी। अतः सिद्धनाथकी चर्चा हो सकती थी।

पण्डित गणेशदत्तने अभ्यागतोंको आसन दिये और बोले, "पुत्र जगन्नाथ, तुम समझते होगे कि तुम्हारे पिताके सामने मैंने जो कुछ कहा उसे भूल जाऊँगा। सिद्धनाथसे मिलनेके बाद मैंने महाराजसे भेंट की थी। दरिद्रता सब पापोंका मूल है। तुम्हारे पिता महान् त्यागी हैं इसमें सन्देह नहीं। किन्तु तुम लोगोंको वह दरिद्र बनाकर जायँ इससे मैं सहमत नहीं हूँ।"

"महाराजसे मिलने पर क्या बातें हुई?" भोलानाथने आकुलतासे पूछा।

"बातें क्या हुई, मैंने महाराजसे कहा कि वैसे तो राज्यमें कोई भी

ब्राह्मण दरिद्र नहीं रहना चाहिए, लेकिन कट्टू मिश्रका वंश तो परम श्रद्धाके योग्य है। बनारसका सारा क्षेत्र उनके प्रतापसे प्रभावित है। रोटी टुकड़ेकी चिन्ता उन्हें हो यह उचित नहीं।"

"फिर ?" भोलानाथ व्यग्र हो उठा।

"महाराजने इस बातको स्वीकार किया। उन्होंने उटाटरियामें परिवारके गुज़ारे लायक थोड़ी-सी ज़मीन देनेका वचन दिया है।"

"थोड़ी-सी ज़मीन !" भोलानाथका चेहरा उतर गया। जगन्नाथको भी इस थोड़ी-सी ज़मीनसे बहुत उत्साह नहीं हुआ। पण्डित गणेशदत्तने दोनोंके भावोंको ताड़ लिया। हँसकर वह बोले :

"यह तो दानका प्रारम्भ है। राजा लोगोंकी इच्छा है, चाहें तो आधा राजपाट वार दें। इसीलिए तो कहता हूँ कि नाटकमें एक भूमिका तुम्हारी हो जाय, तो महाराजको अपने गुण दिखानेका अवसर मिलेगा। प्रसन्न हो जायँगे, तो सदा ही उनके मनमें तुम लोग घर कर जाओगे। राजकाजमें इसी प्रकार लोग उन्नति करते हैं। एक बार किसी बड़े अधिकारीकी नज़रोंमें चढ़े, तो फिर ऊपर चढ़नेके लिए सीढ़ी लग जाती है..."

पण्डित गणेशदत्त अपना उपदेश देते जा रहे थे और जगन्नाथ सोच रहा था कि न ही उन्होंने सिद्धनाथकी कोई चर्चा की है, न ही अपनी कन्या ताराके विषयमें कुछ विशेष कहा है। राजासे कुछ मिले न मिले, किन्तु स्वयं राजपुरोहितसे कन्याके निमित्त क्या मिलेगा यह भी कम महत्त्वका विषय नहीं था। पर इस बातको अपनी ओरसे किस प्रकार कहा जाय ? इन बातोंसे इतना अनुमान जगन्नाथने अवश्य लगाया कि उनके प्रति राजपुरोहितकी यह कृपा केवल ब्राह्मण मात्रको धनाढ्य देखनेकी पुनीत भावनासे उत्पन्न नहीं हुई है। निश्चय ही सिद्धनाथकी ओरसे उन्हें निराशा मिली है।

इतनमें पण्डित गणेशदत्तके एक शिष्यने आकर सूचित किया : "गुरुदेव, बूटी तैयार है।"

पण्डित गणेशदत्तने अभ्यागतोंको सूचित किया : "अब सोनेका समय हो गया है। भोजन करके तुम लोग आनन्दसे विश्राम करो।" फिर अपने चेलेको सम्बोधन करके बोले, "हनुमान, तारासे कहकर अतिथियोंके भोजन और विश्रामका शीघ्र प्रबन्ध करो.....चलो बल्कि, मैं स्वयं ही देखता हूँ।"

जब दोनों भाई उस कोठेमें अकेले रह गये, तो भोलानाथने बड़े भाईके कानोंके पास मुँह ले जाकर चुपकेसे कहा, "राजासे मिलोगे?"

जगन्नाथ बोला, "भोलानाथ, महात्मा चाणक्यने कहा है जिसके पास धन है मित्र भी उसके होते हैं, भाई-बन्धु भी उसके होते हैं, उसीको सब लोग पुरुष मानते हैं और वही पण्डित है। देखना ही होगा कि राजा बनार हम लोगोंके लिए क्या कर सकता है।"

बहुत विचार कर भोलानाथने भी अपनी विद्वत्ताको प्रकट कर देनेके उद्देश्यसे कहा, "अवश्य ही उसे हम लोगोंके लिए कुछ न कुछ करना होगा। नहीं करेगा, तो हम उसके राज्यको छोड़ देंगे। नीतिगुरु चाणक्यने कहा भी है कि जिस देशमें न सम्मान हो, न बन्धुबान्धव हों, न विद्यालाभ हो, वहाँ नहीं बसना चाहिए।"

उसी समय हनुमानने आकर कहा, "महाराज, चलिए। देवी अन्नपूर्णाका प्रसाद पाइए।"

दोनों भाई भोजनके लिए उठ गये।

शंकर और हनुमानने अतिथि-सत्कारमें कुछ उठा न रखा, उन्होंने बड़े उत्साहसे उन्हें भोजन कराना आरम्भ किया। ताराने अपना नर्तकी-वेश उतार दिया था। उसने सादी धोती पहन ली थी और उसका एक छोर गलेमें डाल रखा था। वह द्वारके पास खड़ी होकर यह देखती रही कि

शंकर और हनुमान सत्कारमें कोई त्रुटि तो नहीं कर रहे हैं। कुछ देर बाद वह बोली, "भोजन करते समय आप मौन तो नहीं रखते ?"

"जो खाते हैं वह बिना मौन रखे ही पच जाता है," भोलानाथ ने कहा।

"तो तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दोगे ?" ताराने पूछा।

"विद्वानोंसे उत्तर पाने योग्य हुए, तो तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर अवश्य मिलेगा।"

तारा हँसी। उसने पूछा, "अच्छा बताओ, जितने धर्मप्रचारक और व्यवस्थापक हो गये हैं, वे सबके सब स्त्रियोंकी ओरसे इतने क्रुद्ध क्यों थे ?"

भोलानाथ चटसे बोला, "क्योंकि स्त्रियाँ पापकी खान......"

जगन्नाथने पैरके अंगूठेसे उसके पैरका अंगूठा दबाकर बीचमें ही रोका और स्वयं बोला, "नहीं, देवी, यह बात नहीं। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि स्त्रियोंने कभी अपने ऊपर दी गई व्यवस्थाओंका विरोध नहीं किया।"

"यदि कोई विरोध करे, तो धर्मशास्त्रोंमें से स्त्रियोंके प्रति किये गये ये लांछन हट जायँगे ?" ताराने पूछा।

"पुराने शास्त्रोंसे हटने तो कठिन हैं," जगन्नाथने उत्तर दिया। "हाँ, नये भाष्यकार उन्हें प्रक्षिप्त ठहरा देंगे, और आगे चलकर जो नवीन शास्त्रोंका निर्माण होगा उनमें नारीके प्रति उचित आदरका ध्यान रखा जायगा। स्वयं मैं श्वेताश्वतर उपनिषद्पर एक भाष्य लिखनेका विचार कर रहा हूँ। उसमें भगवान् रुद्रके साथ माँ पार्वतीके महत्त्वका वर्णन करते समय समस्त नारी जातिके आध्यात्मिक उत्थानको बराबरीका दर्जा दिया जायगा।"

तारा इससे प्रसन्न हो गई। उसने आग्रहपूर्वक हनुमानसे कहा, "भैया हनुमान, देखते नहीं अतिथिके सम्मुख खीरका अभाव है?"

हनुमानने तत्काल उस अभावको दूर किया। भोलानाथ सोच रहा था कि उसके बड़े भाईने यह श्वेताश्वतर उपनिषद् पर भाष्य लिखने का विचार कबसे कर लिया। शायद यह तात्कालिक विचार था। वह मन ही मन हँसा। धर्मशास्त्रोंमें स्त्रियोंकी स्थितिसे असन्तुष्ट इस पुरोहित-कन्याको सम्मोहित किये बिना राजपुरोहितके संचित धन पर अधिकार-पूर्वक अधिकार करना सम्भव नहीं है यह वह भली भाँति समझ गया। इसलिए उसने स्वयं मौन रहकर और भी मनोयोगसे खीरका पात्र साफ़ किया और हनुमानके सामने उसे फिरसे पूर्ण कर देनेके लिए सरका दिया।

भोजनके बाद अतिथियोंके सोनेका प्रबन्ध हुआ। एक अलग कोठा उनके लिए नियत हुआ, जो भली प्रकार सजा हुआ था। उन दोनोंके नरम बिछौने आदि बिछानेका काम ताराने स्वयं अपने हाथोंसे किया।

दिन भरके हारे-थके दोनों भाई बिछौनोंपर पड़ते ही अचेत हो गये। भोलानाथको तो खर्राटे लेनेकी आदत थी, सो वह उसमें रमा रहा। मगर जगन्नाथको सपने आने शुरू हो गये। ताराने स्त्रियोंका पक्ष लेनेके कारण उसके आगेसे खीरका अभाव उस समय तक नहीं होने दिया था, जब तक उसके पेटमें स्थानका अभाव नहीं हो गया।

सपनेमें उसे दिखाई दिया कि वह एक भयानक जङ्गलमें भगवान् उमानाथके सम्मुख हाथ जोड़े बैठा है, भगवान्ने उसकी इच्छा जान ली है और अपनी जटासे निकलती हुई गंगाकी धारामेंसे एक चुल्लू जल लेकर उन्होंने सामने फेंक दिया है। जगन्नाथ मुँह फिराकर देखता है, तो यह देखकर चकित हो जाता है कि महासागरके रूपमें जलकी बूँदें दूर-दूरतक धरतीपर फैल गई हैं और देखते ही देखते प्यासी भूमिने उन्हें सोख लिया है। मुँह फेरकर वह देखता है, तो पशुपतिनाथ अन्तर्द्धान हो चुके

हैं। जगन्नाथ खड़ा हो जाता है, फिर उस भूमिकी ओर बढ़ने लगता है, जहाँ अब कमण्डलुके जलसे तृप्त हुई पृथ्वीके गर्भसे नन्हे नन्हे सुनहरी पौधे उठने आरम्भ हो गये हैं। विचित्र गतिसे वे पौधे ऊपर उठ रहे हैं और शीघ्र ही आदमकद हो जाते हैं। प्रत्येक पौधेमें एक गोल आकारका सुनहरी फल लगा है। दूसरी ओर एक चाँदीकी लंबी पत्ती लगी है। जगन्नाथ प्रसन्न होकर उस ओर दौड़ता है। वह शिवजीकी मायासे उद्भूत सोनेके खेतोंका किसान बन गया है। उसकी भूमि स्वर्णमुद्राएँ उगा रही है। वह अब धनवान है, धनाढ्य ब्राह्मण है।

पर निकटतर होनेपर उसे पता चलता है कि प्रत्येक पौधा हिल रहा है। सोनेकी मुद्राएँ और चाँदीकी पत्तियाँ बड़ी लग रही हैं। और भी पास आनेपर वह देखता है कि वे लोहेके पेड़ हैं, वे मुद्राएँ मुद्राएँ नहीं ढालें हैं, और वे चाँदीकी पत्तियाँ छोटे-छोटे भारी खड्ग हैं! उन ढालोंके पीछे सहसा ही दाढ़ीवाले चेहरे निकल आये हैं, जिनकी आँखें क्रूर दृष्टिसे उसकी ओर घूर रही हैं। शीघ्र ही शंकरका डमरू बजने लगता है और भारी शोर करती हुई पौधोंकी वह फ़ौज उसको काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देनेके लिए उसकी ओर भागी चली आ रही है। वह भयसे त्रस्त होकर उल्टे पैरों दौड़ पड़ता है। उसके मुँहसे निकल पड़ता है : "तारा, तारा, बचाओ, बचाओ !"

सहसा ही तारा और भोलानाथ न जाने कहाँसे आकर उसके आगे-आगे दौड़ते दिखाई पड़ रहे हैं। वह पुकारता है, और पुकारता है, और ठोकर खाकर गिर पड़ता है। अब लगता है कि वह पकड़ा ही जायगा। बचावका कोई साधन नहीं। उसकी करुणाजनक दृष्टि पीछे लौटकर उस सेनाको देखती है, जो न जाने किस तरह बहुत पीछे रह गई है, किन्तु दौड़ी चली आ रही है। उसके मुँहसे निकल रहा है : "तारा, तारा !"

एक काली सी वस्तुपर उसकी निगाह जाती है, जो एक तरफ़से तेज़ीके

साथ दौड़ी चली आ रही है। पास आनेपर वह वस्तु एक काली बिल्लीके रूपमें बदल जाती है। यह बिल्ली उस सेनाका मार्ग काट जाती है। सेना बढ़ी आ रही है। किन्तु जहाँसे बिल्ली मार्ग काट गई थी वहाँ आकर वह सेना चीख् चीख्कर लौटने लगती है। उसका प्रत्येक सिपाही कराह रहा है और चिल्ला चिल्लाकर ठंढा पड़ जाता है। यह विनाश-कार्य देखकर जगन्नाथ अपना मुँह अपने हाथोंसे ढककर रो पड़ता है। तभी उसे कोई हिलाता है।

मुँहसे हाथ हटाकर वह देखता है। वह तारा थी, राजपुरोहितकी कन्या। झटकेसे उसकी आँखें खुल जाती हैं और वह घबराई हुई दृष्टि चारों ओर घुमाता है। भय और उत्तेजना उसके सारे शरीरमें समा गई है। किसी वातावरण और स्थितिका उसे भान नहीं है। उसकी बाहुएँ सहारेके लिए बढ़ती हैं और ताराको अपनी छातीसे चिपकानेके लिए उसे बाहुओंमें कस लेती हैं।

"यह कैसी असभ्यता है!" ताराने दाँत किटकिटाकर कहा और बल-पूर्वक मचलकर उसके पाशसे छूट गई। लचीले बाँसकी तरह वह सीधी खड़ी होकर लौटी और कसकर सीधे हाथका एक तमाचा उसने जगन्नाथके मुँहपर दिया। "शूद्र!......पशु!" उसके मुँहसे निकला।

गालपर थप्पड़की गरमाईका अनुभव करते हुए जगन्नाथके सम्मुख प्रकोष्ठकी प्रत्येक वस्तु स्पष्ट हो गई। उसकी आँखोंके ठीक सामने, एक छोटेसे दीपाधारपर हौले-हौले दीपक मुसकरा रहा था।

बाईं ओर नज़र घुमाकर उसने देखा भोलानाथ भी उठा बैठा है और सम्भवतः उसने भी उन दोनोंके बीच घटित यह काण्ड देख लिया है। जगन्नाथने मानो सफ़ाई देते हुए कहा, "सम्भवतः मैं सपना देख रहा था।"

"मेरा सपना देख रहे थे! लज्जा नहीं आती?" ताराने ताड़नाके

तीव्र स्वरमें कहा। "किसने तुम्हें यह अधिकार दिया कि रातको सोते समय सपनेमें तुम मेरा नाम ले लेकर पुकारो, और जब मैं यह देखनेके लिए आऊँ कि अतिथिको क्या हो गया है, तो तुम......तुम शूद्रों और पशुओंकी तरह मुझे......मुझे......!"

"तुम्हें भ्रम हुआ है," जगन्नाथने कहा। "सपना डरावना था..."

"तो तुम यह सिद्ध करना चाहते हो कि तुम डरपोक हो, कायर हो और किसी नारीके आँचलमें मुँह छिपाकर उस भयको तिरोहित करना चाहते हो ? अगर तुम मेरे अतिथि न होते, तो मैं इसी समय तुम्हें अपने घरसे निकालकर बाहर करती। तुम्हीं जैसे लोगोंके कारण हमारे समाजकी स्वतन्त्र नारी धीरे-धीरे पराधीन होती जा रही है। सुबह होते ही किसी कुएँ-पोखरमें डूब मरना। मैं जाती हूँ।"

दोनों भाइयोंने इस उपदेशको हलाहल विषकी तरह पिया। तारा द्वारसे निकलना ही चाहती थी कि जगन्नाथ और भोलानाथ दोनोंने एक ऐसे अन्य व्यक्तिको द्वारपर देखा, जिसके वहाँ होने की उन्हें स्वप्नमें भी आशा नहीं थी।

वह व्यक्ति था सिद्धनाथ। वे ही चमकीले नेत्र, वे ही श्वेत वस्त्र, वही मुद्रा, ठीक दरवाज़ेके बीचों-बीच वही मानवमूर्त्ति दृष्टिगोचर हो रही थी। ताराने उन्हें देखते ही श्रद्धासे हाथ जोड़े। "आप!"

"हाँ," सिद्धनाथने मुसकराकर कहा, "अतिथियोंको इस प्रकार ताड़ना देना वर्जित है, तारा। बाहर आओ। तुम्हारे पिताको इसी समय राजभवन जाना है। उनके चलनेका प्रबन्ध करो। शीघ्रता चाहिए।"

सिद्धनाथकी बराबरमेंसे होकर तारा बाहर निकल गई। उन दोनोंकी ओर मुसकराकर देखता हुआ सिद्धनाथ भी उसके पीछे-पीछे चला गया, और अब जगन्नाथ व भोलानाथके मनोंमें एक विकट उद्वेग खड़ा हो गया।

सिद्धनाथ यहाँ क्यों ? प्रबोध मिश्रके इस लड़केका पण्डित गणेशदत्तके

परिवारसे पहले तो कोई सम्बन्ध नहीं था—तब रातके इस समय यह यहाँ क्या कर रहा है ? पण्डित गणेशदत्तको किसलिए तुरन्त राजभवन जाना है ? ताराने इस प्रकार श्रद्धासे सिद्धनाथको नमस्कार क्यों किया ? क्या सिद्धनाथका इस घरपर इतना प्रभाव है ?

क्रोधमें जगन्नाथने भोलानाथसे कहा, "भोलानाथ, हम इस घरमें अब एक पल भी नहीं रहेंगे।"

भोलानाथ अभी कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया था कि द्वारकी ओरसे आवाज़ आई, "अब रातके समय अतिथियोंको बाहर जानेकी छूट नहीं दी जा सकती। हमारा भी इस नगरीमें एक सम्मान है।" और इसके साथ ही खुले हुए द्वार पटाक्से बन्द हो गये। बाहरसे कुण्डी लगनेकी ध्वनि आई।

यह आवाज़ राजपुरोहितकी कन्याकी थी।

: सिद्धनाथका संकल्प :

रातके समय पालकीके लिए कहारोंका बन्दोबस्त नहीं हो सका, इसलिए पण्डित गणेशदत्तको सिद्धनाथ और उसके अनुचर गदाधरके साथ पैदल ही राजभवन तक जाना पड़ा। रास्ते भर उनके सिरको ठंडी हवा लगती रही, इसलिए वह बिना किसी विशेष घटनाके ही सकुशल ठिकानेपर पहुँच गये। यों वह बूटीके नशेमें धुत् थे।

प्रतिहारोंने अपने अध्यक्षको जगाया। वह आँखें मलता हुआ उठ बैठा, और जब उसे मालूम हुआ कि धर्माध्यक्ष गणेशदत्तजी पधारे हैं, तो वह उनके चरण छूने बाहर आया। आँखोंको उसके ऊपर दृष्टिपात करनेका कष्ट न देकर धर्माध्यक्षने कहा, "जाकर महाराजको खबर कर दे : धर्म-ध्वजकी रक्षाके निमित्त इसी समय दर्शन दें।"

सुनकर महाप्रतिहार तुरन्त चला गया। महाराज रङ्गमहलमें थे। उन तक सूचना पहुँचाई गई और वह तुरन्त चादर ओढ़कर भेंट-कक्षमें आये। वहाँ पहले ही पण्डित गणेशदत्त विराजमान थे। महाराज बनारने उन्हें नमस्कार किया, मगर उन्होंने प्रत्युत्तरमें न ही कुछ कहा और न ही स्वागतके लिए उठे। दासीने पीठिका धर्माध्यक्षके सामने ला रखी और महाराज उसपर बैठकर बोले : "इतनी रातमें आपने कष्ट किया!"

"राज्य और धर्मपर विपत्ति आये, तो रात-दिन कुछ नहीं," पण्डित गणेशदत्त दासीपर दृष्टि टिकाकर बोले। वह बेचारी संकुचित हो गई। किन्तु धर्माध्यक्ष आवश्यकतासे अधिक गम्भीर थे।

"कोई विपत्तिकी बात है?" महाराज भी गम्भीर हो गये।

"हूँ," धर्माध्यक्षने कहा। दृष्टि दासीपर ही टिकी रही।

"तो फिर तुरन्त बताइए न," महाराजने आतुर होकर पूछा।

"बताऊँगा," धर्माध्यक्षने अविचल भावसे कहा।

महाराज बनार उनके बतानेकी प्रतीक्षा करने लगे। एक पल, दो पल, तीन पल—पल पर पल बीतते चले गये, मगर धर्माध्यक्ष मूढ़ भावसे ज्यों के त्यों बैठे रहे। उनकी नज़र दासीपर ही जमी रही। महाराजने यह देखा, तो समझा कि कोई गोपनीय बात है। दासीको चले जानेकी आज्ञा मिली।

जब तक दासी लोप नहीं हो गई, महाराज उसकी पीठ देखते रहे। इसके बाद मुँह फिराकर जब उन्होंने पण्डित गणेशदत्तके मुखकी ओर देखा, तो चौंककर बोले, "अरे, आप रो रहे हैं!"

सचमुच आँसुओंके दो बड़े-बड़े डोरे पण्डित गणेशदत्तके गोल कपोलों पर लुढ़क रहे थे। उन्होंने कहा, "हाँ।"

"कोई बहुत बड़ा कष्ट आ पड़ा है?" महाराजने चिन्तित स्वरमें पूछा।

"कष्ट? हाँ, कष्ट ही है। मेरी कमरमें दर्द रहता है।"

"ओह!" महाराज हाथ मलते हुए बोले, "आपने चिकित्सा नहीं कराई?"

"हनुमान और शंकर रोज़ तेलका मर्दन करते हैं, पर कम्बख्तोंसे ज़ोर नहीं लगता। श्लोक रटनेमें दिमाग़ चाट जाते हैं। आप ही बताइए, महाराज, ऐसे शिष्य किस कामके...? मैं तो सोच रहा हूँ कि अब संन्यास ले लूँ। अब घरमें रह ही कौन गया है, जिसके लिए गृहस्थी चलाऊँ? गृहस्थी तो जीका जंजाल है; है न, महाराज?"

अब महाराजके मनमें असन्तोष उत्पन्न होना आरम्भ हो गया। इस समय, तीन पहर रात बीते, इस विषय पर चर्चा करनेके लिए ही राजपुरोहित उनके पास आये हैं यह बात उन्हें तनिक भी नहीं रुची। उन्होंने शुष्क स्वरमें कहा, "क्यों? आपकी कन्या तो है।"

"हा हा हा हा !" ज़ोरसे हँसकर पण्डित गणेशदत्त अपनी एक उँगली उठाते हुए बोले, "तारा बड़ी सयानी बच्ची है। अजी, तीन दिनसे मेरे सिर पर सवार थी कि उपनिषदोंमें स्त्रियोंको इतना हीन क्यों रखा गया है। भला, उपनिषद् क्या मैंने रचे हैं ? मैं तो कहता हूँ कि वह इतनी विदुषी हो जाय कि अपने आप एक भाष्य लिखे और..."

महाराजने उन्हें बीचमें ही टोकते हुए कहा, "क्षमा कीजिए, क्या आप यही सन्देश लेकर इस रात्रिके समय कष्ट करके पधारे थे ?"

इस बात पर अकारण ही पण्डित गणेशदत्त ज़ोरसे हँसे और उनके हास्यका प्रवाह काफ़ी देरतक चला। फिर बोले, "आपसे मिलकर कितनी प्रसन्नता होती है, महाराज, यह आपने आज तक नहीं समझा...! वास्तवमें मैं आपको प्यार करता हूँ।"

"ओह !" महाराज बड़े असमञ्जसमें पड़े, राजपुरोहितका पद बड़ा ही सम्मानित पद होता है। अतः उँगली हिलाकर गोष्ठी विसर्जित भी नहीं की जा सकती और प्यारकी बातें सुनें इसके लिए भी यह समय कोई बहुत उपयुक्त समय नहीं जान पड़ रहा था। अन्तमें उन्होंने चिन्तित स्वरमें कहा, "आप स्वस्थ तो हैं, पण्डितजी ?"

"हा हा हा हा ! बिलकुल स्वस्थ हूँ। सोनेसे पहले बहुत डटकर अन्नपूर्णाका प्रसाद पाया, ऊपरसे शंकर और हनुमानने विशेष रूपसे परिश्रम करके अन्य दिनोंसे दूना बड़ा गोला कण्ठके नीचे उतार दिया। हा हा हा हा ! महाराज, इतने परिश्रमी शिष्य हर किसी गुरुको प्राप्त नहीं होते। सरस्वती तो मानो उनके सिर पर बैठी है। मैं तो आपसे सिफ़ारिश करनेवाला था..."

महाराज बनार सारी वास्तविकता समझ गये। ठंडसे सिकुड़ी हुई विजया महारानी गरम प्रकोष्ठसे ताज़गी पाकर पण्डित गणेशदत्तके सिर पर नृत्य कर रही थी। स्थिति समझकर महाराज बनारको भी हँसी आई।

वह बोले, "धर्मराज, यह तो आपने आज हमारे ऊपर असाधारण कृपा की है!"

"हा हा हा हा!" पण्डित गणेशदत्त ठहाका लगाकर हँसे। "जब तक हम हैं महाराज, तब तक आपको किसी बातकी चिन्ता नहीं। काशीमें भगवान् विश्वनाथका एक इससे भी बड़ा मन्दिर बनवा दीजिए, बस। भगवान् शंकर डमरू बजायँगे और हम नाचेंगे। हा हा हा हा!"

अब महाराजको चिन्ता हुई कि किस प्रकार इस अप्रत्याशित विपत्ति को यहाँ से टाला जाय कि टूटे हुए विश्रामको फिरसे जोड़नेका अवसर मिले। उन्होंने कहा, "आप अब घर जाकर विश्राम कीजिए। आपका एक-एक शब्द हमारे लिए प्रवचन है। आपके शिष्योंके लिए हम देखेंगे क्या किया जा सकता है..."

"अवश्य, अवश्य," कह कर पण्डित गणेशदत्त उठ खड़े हुए। महाराजने नमस्कार किया और उन्हें सम्मान सहित द्वारसे बाहर कर देनेके लिए साथ चले। देहरी पर पहुँचकर सहसा ही ठंढी हवाका झोंका पण्डित गणेशदत्तकी घुटी हुई चाँदको लगा और उन्हें एक भूली हुई बात याद आ गई। वह घूम कर बोले, "महाराज, मुझे ऐसा याद पड़ता है कि मैं किसी विशेष कार्यके लिए यहाँ आया था।"

"शंकर और हनुमानके बारेमें न? वह तो आप बता ही चुके हैं," महाराज बोले।

"नहीं, भाड़में जायँ शंकर और हनुमान। सालार......सालार...... हाँ, सालार मसूद आनेवाला है......ऐ......ऐ......उसके स्वागतके लिए......नहीं, उससे लड़नेके लिए......न जाने सिद्धनाथ क्या कह रहा था!"

सालार मसूदके नामसे महाराज बनार परिचित थे। महाराज गांगेय-देवकी राजसभाकी कुछ उड़ती खबरें उन तक भी आई थीं। उनके

महामात्य रामेश्वर शुक्लने पंजाबसे आनेवाले कुछ यात्रियोंसे सुनी कुछ बातोंकी चर्चा भी उनसे की थी। उसका नाम सुनकर अथवा उसके आगमनका समाचार जान कर वह चौंके। अपनी तरंगमें बाहर जानेके लिए तत्पर परिडत गणेशदत्तको उन्होंने कंधा पकड़कर रोका और पूछा, "सालार मसूद यहाँ आ रहा है! यह आप क्या कह रहे हैं। यह सिद्धनाथ कौन है, जिसका आपने नाम लिया है?"

"सिद्धनाथको आप नहीं जानते?" परिडत गणेशदत्त जहाँ खड़े थे वहीं बैठनेकी चेष्टा करते हुए बोले, "बड़ा ही कुशाग्रबुद्धि छोकरा है। उसने एक बिल्ली पाल रखी है, महाराज, और उसका नाम भी वही रख रखा है, जो मैंने अपनी बेटी का। नहीं नहीं, वह मेरी स्वर्गीय धर्मपत्नीने रखा था... बाहर ही तो खड़ा है। वही तो मुझे लाया है......मेरे तो कुछ याद नहीं रहा। बुलाओ, महाराज, उसीको बुलाओ। वही बतायगा, हाँ।"

महाराज बनारने अपने हाथोंसे उन्हें नीचे बैठनेसे रोका और सहारा देकर एक आरामदे चाँदीके मोढ़े पर उन्हें बैठाया। इसके बाद बाहर निकलकर उन्होंने प्रतिहारीको पुकारा। उसके आने पर उन्होंने सिद्धनाथको भीतर लानेकी आज्ञा दी।

कुछ ही देरमें नुकीले नाकनक्शवाला गोरा चिट्टा वह युवक उसी कक्षमें उपस्थित हो गया, जहाँ पहलेसे ही दोनों राजपुरुष बैठे थे। उसने हाथ जोड़कर सिर झुकाते हुए महाराज बनारका अभिवादन किया।

अभिवादनका उत्तर देते हुए महाराज बनारने पूछा, "तुम्हारा ही नाम सिद्धनाथ है?"

"जी हाँ," सिद्धनाथने हाथोंको पीठ पीछे करके उत्तर दिया। "मैं स्वर्गीय प्रबोध मिश्रका पुत्र हूँ।"

"ओह!" महाराज बनार कुछ याद करते हुए बोले, "उनसे तो हमारा पुराना परिचय रहा है। बहुत विद्वान् ब्राह्मण थे। उमानाथ

उनकी आत्माको शान्ति दें......तुम्हें देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।"

"यह महाराजकी अनुकम्पा है," सिद्धनाथने कहा।

"धर्माध्यक्ष बताते हैं कि तुम उन्हें रात्रिके इस समय किसी विशेष उद्देश्यसे यहाँ लाये हो। दुर्भाग्यसे उन्हें वह विशेष उद्देश्य याद नहीं रहा।"

सिद्धनाथने होंठ भींचे। फिर बोला, "त्रिपुरीसे कलचुरिवंशशिरोमणि महाराज गांगेयदेवकी ओरसे यवन-आक्रमणके प्रति सतर्क रहनेका सन्देश संभवतः महाराजके पास आ चुका है?"

"जब भी कोई आक्रमण सीमाओंसे परे हुआ है, वह नियमपूर्वक हमारे पास सन्देश भेजते रहे हैं। हमने अनेक युद्धोंमें अपने क्षत्रिय उन्हें भेजे हैं।"

"इस बार महाराज गांगेयदेवकी पूरी सैन्य-शक्ति आपको यहाँ मँगानी पड़ सकती है, यह अनुमान भी आपने लगा ही लिया होगा, महाराज?"

"नहीं, यह अनुमान हमने नहीं लगाया है," महाराज बनारने हँस कर कहा। "यह तुम जैसे छोकरोंके लिए हमने छोड़ रखा है। हम लोग दिन भर राजधर्मका पालन करते हैं, रातोंको सपनोंमें नहीं डरते।" उन्होंने सिद्धनाथको तीव्र दृष्टिसे देखकर कहा, "क्या इसीलिए तुमने रात्रिके इस तीसरे पहरमें धर्माध्यक्षको कष्ट दिया?"

सिद्धनाथ अविचल रहा। सुस्थिर वाणीमें वह बोला, "मेरे ही जैसे एक यवन छोकरेने दिल्ली सर कर ली है, महाराज।"

इस समाचारपर महाराज आश्चर्यसे उछल पड़े। "राजा महीपाल?"

"मारे गये...उनके पुत्र, बन्धुबान्धव, सेनानी, अनुचर सब मारे गये।"

"किन्तु वहाँ तो एक माससे यवन सिर मार रहे थे?"

"उनके सिरोंके प्रहारसे दिल्लीकी प्राचीरें टूट गईं, महाराज।"

"कब पता लगा?"

"अभी एक पहर भी नहीं बीता।"

"आश्चर्य है ! हमारे पास समाचार नहीं आया और एक सामान्य ब्राह्मण प्रजाजनके पास... ! प्रत्येक समाचार हमारे पास पहले आता है।"

"महाराजके पास यह समाचार बहुत देरमें आयगा।"

"क्यों ?"

"क्योंकि प्रत्येक जीवित दिखाई देने वाला पुरुष उनके फरसोंके प्रहारसे दो टूक हो जाता है। दिल्लीमें सामूहिक हत्याकाण्ड हुआ है।"

"फिर तुम्हारे पास यह समाचार कैसे पहुँचा ?"

"इसलिए कि काशी मेरी भी मातृभूमि है। काशीपर आँख रखने वालोंकी प्रत्येक गतिविधिका पता मुझे रहना ही चाहिए ?"

"लगता है तुम साधारण ब्राह्मण नहीं हो," महाराज बनारने कहा। "किन्तु हमारे पूछनेका आशय यह है कि तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो यवनोंके फरसोंसे बच कर समाचार पहुँचा सकती है ?"

"महामुनि चाणक्यके पास ऐसी कौन-सी शक्ति थी, महाराज, कि उन्होंने प्रतापी नन्दका राज्य उखाड़ फेंका ?"

"तो तुमने खाली हाथ यवनोंको उखाड़ फेंकनेका निश्चय किया है !" महाराजने उत्सुकतासे पूछा।

"एक संकल्प किया है छोटा-सा," सिद्धनाथने दृढ़ स्वरमें कहा। "महामुनि चाणक्य जैसी प्रतिभा मुझमें नहीं है। किन्तु यदि काशी उजड़ी, तो एक भी विदेशी जीवित ग़ज़नी नहीं लौटेगा। यह मेरा प्रण है। यही मेरा निश्चय है।"

"हम तुम्हारे इस छोटेसे संकल्पसे प्रसन्न हैं," महाराज बनारने सन्तोषके साथ कहा। "किन्तु काशीपर आक्रमण होगा यह तुम्हारा भ्रम है। भारतमें सिकन्दर जैसा विश्वविजयी आया, काशी अछूती रही। यहाँ मुहम्मद-बिन-कासिम जैसा सिपहसालार आया, काशी अडिग रही। यहाँ

महमूद ग़ज़नवी जैसा धर्मान्ध पशु आया, काशी बाल बाल बची रही। यहाँ तैंतीस करोड़ देवताओंका वास है।"

परिडत गणेशदत्तकी आँखें मुँदी हुई थीं। नींदमेंसे सहसा ही चौंक कर वह राजा बनारकी बातमें योग देते हुए बोले, "महानगरी काशी साक्षात् उमापतिके त्रिशूलपर स्थित है। यहाँ जो आयगा, भगवान् विश्वनाथ त्रिशूलसे उसका सिर काट डालेंगे।"

सिद्धनाथने छातीपर हाथ बाँध लिये और बोला, "यदि यवनोंके प्रतिरोधके लिए केवल इतनी ही शक्तियाँ काशीमें हैं, तो यवनोंको बहुत बड़ी सुगमता हो जायगी, महाराज। भगवान् विश्वनाथपर अधिक विश्वास न कीजिए। वह एक बार सोमनाथमें यवनोंके हाथों भग्न हो चुके हैं। इस बार भी यदि उन्होंने भयभीत होकर नीचेसे त्रिशूल हटा लिया, तो इस महानगरीको पातालमें पहुँचते देर न लगेगी, महाराज।"

"युवक!" महाराज बनारने रोषपूर्ण शान्तिके साथ स्वरपर ज़ोर देते हुए कहा, "तुम्हारा ख़ून बहुत गरम है। और तुम अपने सम्भाषणमें स्वयं भगवान् नीलकण्ठका अपमान कर रहे हो।"

"नरकका भागी बनेगा," धर्माध्यक्षने नींदमें ऊँघते हुए अपना मत व्यक्त किया।

"बस, मुझे और कुछ नहीं कहना है, महाराज। जहाँ देवताओंके अपमानका प्रश्न आ जाता है वहाँ मेरे लिए कहनेको कुछ शेष नहीं रहता।"

महाराज बनारने एक क्षण सोच कर विनम्र स्वरमें कहा, "युवक, पतितपावनी काशीमें लोक-लोकके मनुष्य अपने पापोंका क्षय करनेके लिए आते हैं। हमने कोई सार्वजनिक पाप नहीं किया है, जिससे यवनोंके रूपमें यमराजके दूत हमारा द्वार खटखटायें। हम एक भी ब्राह्मणको अपने राज्यमें दुखी नहीं रहने देते, जिससे देवताओंके कोप-भाजन बनें। फिर भी

हम सतर्क रहेंगे, तुम्हारी राजभक्तिसे हम बहुत प्रसन्न हैं। धर्माध्यक्ष जी!"

"जी महाराज," धर्माध्यक्षने एकदम सतर्क होकर कहा।

"कर्पूरमंजरीके प्रेमी राजा चन्द्रपालका अभिनय कौन कर रहा है?"

"अभी तो कोई नहीं, अन्नदाता।"

"तो वह भूमिका इस युवकको मिलनी चाहिए। हमें इसी तरहका एक युवक चाहिए, जो बोलनेमें स्पष्ट और बदन में जँचता हुआ हो, जिसके बदनसे तेज निस्सरित होता हो।"

"अवश्य, अन्नदाता।"

सिद्धनाथ खड़ा-खड़ा भुन रहा था। वह शायद यह आशा नहीं लेकर आया था कि उसकी गंभीर चेतावनीको इस प्रकार हथेली पर रखकर फूँकसे उड़ा दिया जायगा। तमतमाये मुखकी मुद्राको यथासम्भव संयत रखकर उसने तीखे स्वरमें कहा, "महाराज, जो नरपति शत्रुकी गर्जना सुनकर भी रागरंगमें मस्त रहते हैं, उनकी रक्षा स्वयं ब्रह्मा भी चाहें तो नहीं कर सकते। हिन्दूकोह के राजा राय जोगीदास,कड़ा और माणिकपुरके जागीरदार, शाभुनके सहरदेव, बलूनाके हरदेव तथा अन्य सैकड़ों नरेश समयसे पहले चेतन हो गये हैं। सालार मसूदका कोतवाल मियाँ राजब बहुत भयंकर और धर्मान्ध व्यक्ति है। उसकी सेनामें अन्य सब उसके अनुरूप हैं। इस बार जो जमघट ग़ज़नीसे आया है, उनमेंसे प्रत्येककी आँखमें त्रिशूल है, और उस त्रिशूलकी दिशा देवताओंकी नगरी काशीकी ओर है। सावधान हो जाइए, महाराज, नहीं तो विनाश निश्चित है।"

महाराज बनारने कुपित होकर कहा, "तुम बहुत उद्दण्ड प्रकृतिके युवक मालूम होते हो। यदि तुम राजभक्तिकी ढाल लेकर न आये होते, तो हम तुम्हें गूंगा करके यहाँसे भेजते। हमारे सामनेसे चले जाओ। हम राजनीतिको तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह समझते हैं। यदि अब राजा और धर्मके विरुद्ध

तुमने एक भी शब्द कहा, तो ध्यान रखना, हमारा कोप बहुत अधिक सहनशील नहीं है।"

सिद्धनाथने छातीसे हाथ खोल दिये। एक क्षण तक उसने तीखी दृष्टिसे राजा बनारकी ओर देखा, फिर दोनों हाथ जोड़कर सादर अभिवादन किया और वापस लौटनेके लिए मुड़ा। उसी समय द्वारपालका स्वर बाहरसे आया :

"दो ब्राह्मण युवक इसी समय महाराजकी सेवामें उपस्थित होना चाहते हैं, अन्नदाता।"

एक पल ठिठक कर सिद्धनाथ प्रकोष्ठसे बाहर निकल गया। राजा बनार अभी एक ही ब्राह्मण युवकसे बुरी तरह निबटे थे। अब दोकी बात सुनकर उन्होंने कहा, "उन लोगोंसे कहो कि रात्रिका समय राजकाजके लिए नहीं होता—दिनमें उपस्थित हों।"

किन्तु द्वारपाल सम्भवतः पहले ही इसके लिए तत्पर होकर आया था। उसने कहा, "वे अपनेको उटाटरियाके कट्ठू मिश्रका रक्त बताते हैं, अन्नदाता।"

"कट्ठू मिश्रके पुत्र! महाकालकी इस रात्रिमें राजभवनमें!" राजा साहबने आश्चर्यके साथ पण्डित गणेशदत्तकी ओर देखा, जो बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। उन्होंने शेष रात्रि भर सोनेका विचार छोड़ दिया और द्वारपालसे कहा, "उन दोनोंको उपस्थित होने दो।"

जगन्नाथ और भोलानाथ उपस्थित हो गये। वे कुछ बेचैन नज़र आते थे। सम्भवतः सिद्धनाथ राजभवनसे बाहर जाते समय उन लोगोंके कानोंमें कुछ ढाल गया था। उसीकी स्मृतिसे वे दुखी प्रतीत होते थे। हवाने यदि शब्दोंका रूप बिगाड़ न दिया हो, तो शायद सिद्धनाथ कह गया था :

"एक ही रातमें इतनी अधिक भागादौड़ी मत करो, मित्रो। तुम लोगोंका काल आ रहा है, उसकी ओर ध्यान दो।"

इस कालके संदर्भका पता तो उन्हें स्वप्नमें भी नहीं था। महाराजके सामने उपस्थित होकर उन्होंने चिन्तित स्वरमें कहा, "अन्नदाताकी जय हो।"

"भगवान् नीलकण्ठ तुम्हारा मंगल करें," राजा बनारने कहा। "तो तुम्हीं दोनों परम श्रद्धेय, परम शिवभक्त कट्ठ मिश्रके पुत्र हो?"

कट्ठू मिश्रका नाम इस बार ठीक तरहसे पण्डित गणेशदत्तके कानोंमें पड़ा और वह सहसा ही आँखें खोलकर बोले, "जी हाँ, अन्नदाता, उन्हें थोड़ी सी ज़मीन और थोड़ी सी स्वर्णमुद्राएँ आपको कल उटाटरिया भेजनी हैं......"

राजा बनारने धर्माध्यक्षकी ओर दयाकी दृष्टिसे देखा। जगन्नाथने उनके प्रश्नका उत्तर दिया, "जी, महाराज। हम दोनों धर्माध्यक्ष पण्डित गणेशदत्त जीके अतिथि हैं......"

"ओह! धर्माध्यक्षके अतिथि! अच्छा है। तुम्हारा काशीवास सुखकर तो हुआ न?" राजा बनारने पूछा।

"जहाँ महाराजकी छत्रच्छाया है वहाँ सुख ही सुख है, अन्नदाता," जगन्नाथने कहा।

"रात्रिके इस समय कष्ट करनेका प्रयोजन?" राजाने पूछा।

"महाराज, अभी-अभी जो कालपुरुष यहाँसे गया है उससे आतिथेयकी रक्षा करना ही हमारा प्रयोजन था। वह अपने प्रचण्ड अनुचरके साथ आधीरातको धर्माध्यक्षके घरमें आया, उनकी पुत्रीको भ्रमित किया, और हमारे कोठेकी सांकल बाहरसे लगवाकर धर्माध्यक्षको राजभवनकी ओर ले आया। अन्नदाता, इससे हमें संदेह हुआ कि कहीं वह धर्माध्यक्षका और साथ-साथ महाराजका भी कुछ अमंगल न करे। हमने बड़ी चिरौरी

विनतीसे धर्मांध्यक्षके परम योग्य शिष्य हनुमानसे अपने कोठेकी सांकल खुलवाई और सीधे भागे-भागे यहाँ तक चले आये।"

महाराज बनार यह बात सुनकर बहुत हँसे। उनको हँसता देखकर पण्डित गणेशदत्त भी हँसने लगे। शायद उन्हें हँसीका ही कोई सपना दिखाई भी दे रहा था। विजयादेवी उनके घुटे हुए सिरके भीतर सुर-सुराहट कर रही थी।

धर्माध्यक्षको हँसते देखकर राजा बनार गंभीर हो गये और आँखके कोनेसे उनकी ओर देखते हुए बोले, "अपने गुरुजनोंके प्रति तुम लोगोंकी इतनी चिन्ता देखकर हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। अरे, तुम लोगोंने अभी आसन नहीं लिया! बैठो, बैठो। ब्राह्मणपुत्रोंका इस प्रकार सेवामें एक टाँगसे खड़े रहना उचित नहीं है। आसन लो।"

दोनों बन्धुओंने इसे अपना परम सौभाग्य समझा। वे चुपचाप एक ओर रखी लम्बी पीठिका पर बराबर बराबर सटकर बैठ गये। उन्हें भलीभाँति देखते हुए राजा बनारने कहा, "कहो, घरमें सब कुशलमंगल तो है? महामना कट्टू मिश्रसे हम बहुत पहले कभी मिले थे। उनकी गति शास्त्रोंमें देखकर हमें भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी। अब सुनते हैं उन्होंने संसारको एक प्रकारसे त्याग ही दिया है—क्या यह सही है?"

भोलानाथने बड़े भाईकी बगलमें कुहनी मारकर सावधानीका संकेत किया। जगन्नाथने कहा, "संसारको सर्वथा तो कोई भी संसारी मृत्युसे पहले नहीं त्याग सकता, अन्नदाता। पेटका गड्ढर भरनेकी आवश्यकता हर शिवभक्तको पड़ती है। कोई भीख माँगकर भरता है, कोई सेवाचाकरी करके, तो कोई महाजनी करके। इन लौकिक कर्मोंको अवश्य पूज्य पिता जीने त्याग दिया है। अब तो शिवकी ही ओर समस्त ध्यान और समस्त चेष्टाएँ हैं—भूखे रहें तो, अघाये रहें तो।"

"ओह!" महाराज बनारने अत्यन्त द्रवित होकर कहा, "हम तो उन्हें

कुछ ज़मीन देना चाहते थे। सोचा था कि उसपर तुम लोग कुछ जोत बोकर उन्हें इन सांसारिक पचड़ोंसे मुक्त कर सकोगे। सो कल ही......"

भोलानाथने बीचमें ही बात काटकर कहा, "क्षमा करें, महाराज। भूमि तो भगवान्‌की चारों ओर बिखरी पड़ी है। जहाँ लाठी टेक दें, वहीं पर भूमि मिल जायगी। हम दोनों तो उपनिषदोंके भाष्य लिखनेमें लगे हैं, अन्नदाता। भूमि जोतने-बोनेका मोह रखेंगे, तो धर्मका कुछ भी उत्थान हमसे न होगा। क्यों भैया, बोलते क्यों नहीं?"

जगन्नाथने कहा, "यह तो ठीक है, महाराज।"

राजा बनारने कुछ सोचा। फिर बोले, "अच्छा, यदि पाँच सो नन्दी उन्हें भेज दें, तो वह स्वीकार कर लेंगे न?"

पाँच सौ सोनेके नन्दी! दोनों भाइयोंकी बाँछें खिल गईं। किन्तु प्रकटमें जगन्नाथने उपेक्षा दिखाते हुए कहा, "वह तो क्या स्वीकार करेंगे, अन्नदाता। उन्होंने तो अपनेको शिवके अर्पण कर दिया है। हाँ, जो कुछ आप भेजेंगे वह भोले शंकर स्वीकार करें, तो करें।"

"तब ठीक है," राजा बनारने कहा। "धर्माध्यक्ष जी, कल दोपहरको ही पूज्य मिश्र जीके पास पाँच सौ सोनेके नन्दी हमारी ओरसे शिवार्पण करके भेजनेके लिए प्रधानामात्यसे कह दीजिए।"

"अवश्य कह दूँगा, अन्नदाता," धर्माध्यक्षने निर्लेप भावसे कहा।

"और हाँ, देखिए, ये दोनों ब्राह्मणपुत्र बड़े अच्छे अवसरसे मिल गये। इनमें जो बड़ा है उसे नाटकमें विदर्भराज वल्लभराजकी भूमिका दीजिए, और जो छोटा है इसे कर्पूरमंजरीके प्रेमी राजा चंद्रपालकी भूमिका बहुत फबेगी। क्या विचार है?"

"अन्नदाताका विचार युक्तियुक्त है।"

जगन्नाथ और भोलानाथके चेहरे उतर गये। ये भूमिकाएँ तो सर्वथा उल्टी हो गई लगती हैं! धर्माध्यक्षकी पुत्रीका प्रेमी भोलानाथ! शिव-

शिव ! फिर यह सब भी भुगता जाय, तो उन पाँच सौ सोनेके नन्दियोंका क्या होगा ? वे तो उन दोनोंकी अनुपस्थितिमें ही उटाटरिया पहुँचेंगे। उनका सदुपयोग करनेवाला ही वहाँ कौन होगा, जब कि दोनों भाई यहाँ नाटकके अभिनेता बननेके लिए काशीवास कर रहे होंगे ? जगन्नाथने मुँह खोलकर कुछ कहना चाहा, किन्तु राजा बनार उठ गये।

"अब हम विश्राम करेंगे। तुम दोनों सावधानीसे अपने आतिथेयको इनके घर ले जाओ। यहाँसे दो प्रतिहारी अपने साथ ले लेना। कहना, हमारी आज्ञा है," और यह कहकर महाराज बनार अन्तःपुरकी ओर प्रस्थान कर गये।

: कर्पूरमञ्जरी :

राजभवनसे निकलकर सिद्धनाथ अपने अनुचरके साथ फिर लौटकर पण्डित गणेशदत्तके घर आया ? तारा भीतरसे साँकल लगाकर श्वेताश्वतर उपनिषद् पर शंकराचार्यके भाष्यकी एक हस्तलिखित प्रतिका पाठ करते हुए दीपकके सम्मुख बैठी रह गई थी। द्वार पर खटखट सुनकर वह द्वार खोलनेके लिए दौड़ी क्योंकि शङ्कर और हनुमान अपनी-अपनी चटाइयों पर अधलेटेसे ऊँघनेमें लगे थे।

केवल सिद्धनाथ और गदाधरने भीतर प्रवेश किया। ताराने पूछा, "पिताजी कहाँ रह गये?......और उटाटरियाके दोनों अतिथि पहुँचे थे क्या? उस मूर्ख हनुमानने उन्हें खोल दिया था।"

"वे तीनों एक साथ आयेंगे," सिद्धनाथने गम्भीर स्वरमें कहा।

"आप शायद महाराजके दर्शन नहीं कर सके," तारा उन्हें भीतर ले जाती हुई बोली।

"दर्शन तो मिल गये, किन्तु महाराजने मेरी बातपर कान नहीं दिया। उन्हें नाटक खेलनेसे अवकाश नहीं है......"

"नाटक तो ख़ैर चलना ही चाहिए", ताराने कहा, "किन्तु राजकाजके काम भी होते ही हैं।"

सिद्धनाथ सीढ़ियोंके बीचमें ही खड़ा हो गया। "यह नाटक कश्मीरके राजशेखरका है न?"

"हाँ, हाँ, कर्पूरमञ्जरी है। महाराजने नहीं बताया आपसे?" ताराने पूछा।

"हाँ, बताया था......किन्तु यह नहीं बताया कि उसमें नायिकाकी भूमिका कौन ले रही है......"

"उसमें बताना ही क्या ? वह तो मैं ही हूँ," ताराने उसके स्वरपर आश्चर्य करते हुए कहा।

"तुम ! तुम उसमें कर्पूरमञ्जरीकी भूमिकामें उतरोगी ?" सिद्धनाथने आश्चर्य प्रकट किया। तान्त्रिक भैरवानन्दके मन्त्रबलसे खिंचकर, झीने अन्तरवासकको बदनसे चिपकाये, नहाती हुई कुमारी कन्याके रूपमें तुम सकल सभासदोंके बीच काँपती-लजाती खड़ी होगी, और नायक तुम्हारे अंगोंकी कठोरता और कोमलताको लक्ष्य करके काव्यमय श्लोकोंका उच्चारण करेगा, तो तुम मर नहीं जाओगी ? तुम्हारी रुचि तो बहुत परिष्कृत हो गई लगती है !"

दीपक थामे ताराका हाथ काँपने लगा। क्षण मात्रमें ही वह उसके हाथसे छूटकर सीढ़ियोंपर गिर पड़ा। झन्नसे पीतलकी ध्वनि अन्धकार-पूर्ण वातावरणमें गूँज गई। ताराने झटसे पीछे मुड़कर देखा। गदाधरकी विशालकाय मूर्त्तिका आकार दृष्टिगोचर हुआ। तीनोंमेंसे किसीने भी सीढ़ियोंपर आगे बढ़नेकी चेष्टा नहीं की।

अपनेको थोड़ा संयत करके ताराने कहा, "इस प्रकार तो संस्कृत और प्राकृतके सारे दृश्य काव्य अश्लील ठहरेंगे, जी !"

मुँह फेरकर सिद्धनाथने सीढ़ियोंके ऊपर चढ़ते हुए कहा, "तारा, निश्छल प्रेम हमारी नैतिक और मानसिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिका माध्यम है, इसमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती—मुझे भी नहीं है। सुखी जीवनके अवरोध और माध्यम साहित्यमें प्रकट हों यह भी कोई बुरी बात नहीं। पर साहित्यमें कामुकता ही हमारी नैतिक, मानसिक, सामाजिक सब रुचियोंका हरण कर ले यह सर्वथा उचित नहीं। गृहस्थ-धर्म, मानव-धर्म, राजधर्म आदिकी पोथियोंके अम्बारपर बैठकर हम स्नान करती हुई

स्त्रियोंपर काव्यकी बौछार करते रहेंगे, तो रक्तकी होली खेलने आये इन विदेशी आक्रमणकारियोंसे निबटनेके लिए निश्चय ही अवकाश मिलना दुर्लभ हो जायगा। ऐसे विकृत मनोरञ्जनमें मन, वचन, कर्मसे योग देने जाओगी, तो ज्यों-त्यों करके बदनकी लाज ढकनेवाला यह चिपका हुआ अन्तरवासक भी कोई अपरिचित हाथ किसी दिन आकर उतार लेगा।"

अब वे लोग पण्डित गणेशदत्तके उस प्रकोष्ठमें पहुँच गये थे, जहाँ वह सोते थे। गदाधर द्वारपर ही ठहर गया था। कक्षमें एकान्त था। तारा सिद्धनाथके उपदेशसे मर्माहतकी भाँति उसका मुँह निहार रही थी। उसकी आँखें डबडबा आई थीं। वह अपनेको बहुत छोटा अनुभव कर रही थी। उपालम्भके स्वरमें उसने कहा, "तुम कभी-कभी बहुत कड़वे बोल बोलते हो!"

सिद्धनाथने उसकी आँखोंमें देखा और सान्त्वनाके भावसे मुसकराकर बोला, "तुम तो पुराने युगकी स्वतंत्रताप्रिय नारी हो। अपनी आलोचना सुनकर इस प्रकार आहत अनुभव करोगी, तो ये विलासप्रेमी राजा लोग तुम्हारे कोमल मांसको आँखोंसे देखते-देखते दाँतोंसे चबा जायँगे। आँखों और दाँतोंके इस बीचके अन्तरको पार करनेके लिए ही राजकवि रातोंको श्रम करके महाकाव्योंकी रचना करते हैं।"

कुछ पलों तक तारा मानके भावसे सिद्धनाथकी आँखोंमें देखती रही। फिर धीमे शब्दोंमें बोली, "तुम कहोगे, तो मैं इस नाटकमें अभिनय नहीं करूँगी।"

कहनेका जो अधिकार सिद्धनाथको दिया जा रहा था वह व्यर्थ ही नहीं था। उससे बचते हुए वह बोला, "मुझे यह सब कहनेका अवकाश कहाँ है, तारा? कल ही तो कद्दू मिश्रके पुत्रोंको मैंने वचन दिया है।"

"क्या वचन दिया है मैं भी सुनूँ?" ताराने आशंकित होकर पूछा।

"यही कि उनके जीतेजी तुम्हारा विवाह मेरे साथ नहीं होगा।"

यह सुनकर तारा धक्से रह गई। उसे ऐसा अनुभव हुआ, मानो सिद्धनाथने बड़े ज़ोरसे उसके मुँह पर कराघात किया हो। हतप्रभ, हताभा होकर वह पास ही पड़ी एक पीठिका पर बैठ गई। पल भरमें ही उसकी आँखोंका जल बूँदोंमें बदलकर गालों पर लुढ़क चला। अपने मुँहको दोनों हाथोंसे छिपाकर वह रोती हुई बोली : "क्या तुम सचमुच इतने क्रूर हो, सिद्धनाथ ?"

सिद्धनाथने मुँह फेरकर कहा, "तुम्हारी आँखोंसे जो जल बनकर बह रहा है वह मेरे हृदयमें भी है। वह पानी बनकर बाहर नहीं आ पा रहा है इसका कारण एक आग है। वह आग नहीं बुझेगी, तो तुम जैसी हज़ारों-लाखों स्वतन्त्रमना लड़कियोंकी आँखोंका पवित्र जल कभी शुष्क नहीं हो पायगा। उस जलके कटोरे ग़ज़नीमें कौड़ियोंके मोल बिकेंगे।"

ताराने सिर उठाया। धोतीके कोनेसे जल पोंछ लिया। बोली, "इस आगके बुझनेमें जितना समय लगेगा वह मेरे जीवनसे तो बड़ा नहीं होगा। मैं तब तक प्रतीक्षा करूँगी।"

"आग तो जल्दी ही बुझेगी, तारा, किन्तु उसे बुझानेमें जिन वस्तुओंका होम करना होगा उसमें स्वयं मेरा तन भी होगा। बिना इस तनके होमकी अभिलाषाके मनका होम नहीं होगा, और बिना इस मनका होम किये यह यज्ञ पूरा नहीं होगा।"

"मेरा भी एक निश्चय है," तारा पीठिकासे उठते हुए तन कर बोली। "भारतीय नारी जन्म-जन्मान्तरोंमें केवल एक ही पुरुषका वरण करती है।"

"किन्तु भारतीय नर एक नारीका वरण नहीं करता," सिद्धनाथने कठोर और संयत स्वरमें कहा। "उसके प्रति इतनी अधिक भक्ति दिखानेकी आवश्यकता नहीं है। तुमसे परिणय करके मैं तुम्हारा सर्वनाश नहीं करना चाहता। करूँगा, तो मेरे जैसा क्षुद्र मनुष्य इस धरती पर और कोई

नहीं होगा। ज़रा सोचो तो सही, आजकल ये लोग विधवाओंको पतिके शवके साथ बलात् चितापर जलानेका धर्मान्दोलन कर रहे हैं।"

तारा उत्तरमें कुछ कहनेवाली थी कि उसी समय मुख्य द्वारकी साँकल बजनेका स्वर सुनाई पड़ा। सिद्धनाथने कहा, "हम लोगोंके चलनेका समय हो गया है। तुम्हारे मनका मोह दूर करनेके लिए ही मैं, एकान्तका विचार करके, वापस लौटते हुए यहाँ आया था। जब सर्वथा एकान्त मिले, तो स्वस्थ मनसे सोचना। अब तुम जाकर अतिथियोंके लिए द्वार खोल दो।"

यन्त्रचालितकी भाँति तारा बाहर निकली। मगर उससे पहले ही हनुमान और शङ्कर दोनों अपनी ऊँघ छोड़कर बाहरकी ओर लपक गये थे।

जगन्नाथ और भोलानाथ पण्डित गणेशदत्तको सहारा देकर ला रहे थे। आगे शङ्कर और पीछे हनुमान था। बीच चौकमें आकर सबने सिद्धनाथ और तारा, तथा उनके पीछे गदाधरको नीचे उतरते देखा। उन लोगोंके पीछे सिद्धनाथ और ताराने एकान्त लाभ किया है यह देखकर जगन्नाथकी भौंहें तन गईं। पण्डित गणेशदत्त भी अपनी झोंकमें रहते-रहते सब कुछ सुन लें इस भावसे उसने उच्च स्वरमें कहा, "अच्छा, तो आप लोग राजभवनसे आकर यहाँ आपसमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातचीत कर रहे थे!"

"बहुत ऊँचे बोल रहे हो!" सिद्धनाथने मुसकराकर कहा, "मालूम होता है महाराजने नाटकमें तुम्हें कपिञ्जलकी भूमिका प्रदान कर दी है।"

जगन्नाथ जलकर राख हो गया। प्रकारान्तरसे सिद्धनाथने उसे 'कर्पूरमञ्जरी' का विदूषक कहकर पुकारा था। निकट ही था कि वह अपने बीसों नखों सहित सिद्धनाथ पर टूट पड़ता कि पण्डित गणेशदत्त दोनोंके बीचमें आ गये। उन्हें सिद्धनाथके यहाँ होनेका ज्ञान हो गया था और वह मन-ही-मन सोच रहे थे कि वह राजा चन्द्रपालकी भूमिकाका पूर्वाभ्यास करनेके लिए ही वापस आते हुए ठहर गया है! उन्होंने कहा: "देखो, सिद्धनाथ...तुम क्या छोटी-सी बात लेकर गये थे और महाराजने तुम्हें

क्या दे दिया ! अब कलसे नियमपूर्वक परसों तक सारा अभ्यास कर लेना है। नाटकमें किसी प्रकार की त्रुटि महाराज सहन नहीं करेंगे..."

"क्षमा कीजिए, मैं जा रहा हूँ," सिद्धनाथने हाथ जोड़कर निवेदन किया, और गदाधरको पीछे आनेका संकेत करके चल पड़ा। तारा उनके पीछे-पीछे उन्हें द्वार तक छोड़नेके बहाने गई।

द्वार पर आकर सिद्धनाथ एकदम घूमकर बोला, "तारा, इन ब्राह्मण-पुत्रोंमेंसे बड़ा भाई तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता है। तुम्हारे रूप-गुणसे ही यह तुम्हारी ओर आकर्षित हुआ है ऐसा प्रतीत नहीं होता। किन्तु कोई दूसरा कारण भी मैं अभी तक नहीं खोज पाया हूँ। यदि यह सुपात्र निकले, तो इसके साथ विवाह कर लेना। जीवन व्यर्थ ही खोनेके लिए नहीं है।"

"यह उपदेश मैं पत्थर पर अङ्कित करके रख लूँगी," ताराने नपे-तुले शब्दोंमें उत्तर दिया। "आपको दोबारा याद दिलानेकी आवश्यकता नहीं होगी।"

सिद्धनाथने एक निःश्वास छोड़कर ताराको देखा और लौटकर गदा-धरका साथ पकड़ने के लिए बढ़ चला।

शेष रात ताराने सोनेका उपक्रम नहीं किया। उपनिषद्के भाष्यमें उसने इस घटनाका दार्शनिक उत्तर खोजनेकी चेष्टा की, किन्तु भाष्यके अक्षर अस्वाभाविक रूपसे संगठित होकर उसकी मनोभावनाओंकी हँसी उड़ाते रहे।

उस दिन दोपहर तक पण्डित गणेशदत्तके सिर पर चढ़ी विजया महारानी पूर्णतः उतर गई। तब उन्हें एक-एक करके रातकी सारी घटनाएँ स्मरण हो आईं। सबसे पहले उन्होंने शंकर और हनुमानको बुलाकर उनकी पीठ पर एक-एक धौल जमाया और उन्हें वर्जित कर दिया कि सिल-बट्टे पर वे लोग इतनी अधिक श्रद्धासे न भँटा करें। इसके बाद

स्नानध्यानादिसे छुट्टी पाकर, अन्नपूर्णाका प्रसाद ग्रहण कर वह पालकीमें राजमहलकी ओर झपट चले।

ऊँचे अधिकारियोंमें सबसे पहले महामात्यके दर्शन हुए। उन्होंने उन्हें देखते ही कहा, "नमस्कार, धर्माध्यक्षजी। कल महाराजने पण्डित कट्ठ मिश्रको भेंट भिजवानेकी बात कही थी न?"

"हाँ, हाँ, उसे आज ही भेज दीजिए," उन्होंने उत्तरमें कहा।

"पाँच सौ नन्दी लेकर आज प्रातःकाल ही महाराजने एक मनुष्यको यहाँसे चलता कर दिया था," धर्माध्यक्षकी प्रसन्न मुद्राको देखकर हँसते हुए महामात्य रामेश्वर शुक्लने सूचित किया।

"फिर?" उत्सुकतासे पण्डित गणेशदत्तने पूछा। "कोई विशेष बात?"

"विशेष बात यह कि मिश्रजीने उन नन्दियोंको लौटा दिया है..."

"हँय! लौटा दिया है! वह क्यों?"

"इसलिए कि उनका ध्यान शिवजीमें लगा है, शिवजीके वाहनोंमें नहीं। उनका कहना है कि भगवान् उमापतिके भक्त किसी संसारीका दान ग्रहण नहीं करते।"

"हूँ!" पण्डित गणेशदत्तके गलेसे निकला। यह बात उन्हें पसन्द नहीं आई कि कट्ठ मिश्र शिवजीके सारे भक्तोंके बारेमें यह व्यवस्था दे दें। "महाराज कहाँ हैं?" उन्होंने पूछा।

"महाराज स्नानागारमें अंगलेपन ग्रहण कर रहे हैं," महामात्यने कहा। "उन्होंने आपके आते ही सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा दी है।"

"चलिए।"

दोनों अधिकारी पुरुष राजभवनके अन्तर्भागमें स्थित स्नानागारमें पहुँचे। यह एक बहुत लम्बा-चौड़ा चौक था, जहाँ अनेक सेवक-सेविकाएँ महाराजके स्नानके लिए तैयारियाँ कर रहे थे। एक सेविका अनुलेपनका

पात्र एक पत्थरकी चौकी पर रखे दोनों हाथोंसे उनके शरीर पर एक विशेष प्रकारके उबटनका लेपन कर रही थी।

बैठे-बैठे ही महाराज बनारने कहा, "आइए, धर्माध्यक्षजी। राज्यकोशसे पाँच सौ नन्दी हमने सुबह पण्डित कट्ठू मिश्रके पास भिजवा दिये थे यह आपको मालूम हो चुका होगा।"

अभिवादनमें हाथ जोड़े-जोड़े पण्डित गणेशदत्त बोले, "जी हाँ, धर्मावतार, सब मालूम हो गया है। यह भी कि उन्होंने उन्हें स्वीकार नहीं किया। पण्डित कट्ठू मिश्र परम त्यागी पुरुष हैं, महाराज।"

उसी समय दूसरी दासी पात्र लिये हुए आई और महाराजने उसकी ओर दूसरा हाथ बढ़ा दिया।

"ऐसा ही हमारा विचार है," महाराज बनारने कहा। "किन्तु धर्म-राज्यमें किसी ब्राह्मणके भूखों मर जानेसे तो यह राजधानी पातालमें पहुँच जायगी। हमें ऐसा अनुभव होता है कि महामना पण्डित कट्ठू मिश्रकी कीर्त्तिके लिए यह द्रव्य अपमानजनक था, इसीलिए उन्होंने लौटा दिया है। आपका क्या विचार है?"

"सम्भव है," धर्माध्यक्षने ब्राह्मणोंके प्रति काशीराजकी सजगता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"हमारा विचार है कि राजकोशसे इस वर्षके धर्मादेका दशमांश पण्डित कट्ठू मिश्रको मिलना चाहिए। आपका क्या विचार है?"

दशमांश! पण्डित गणेशदत्त मुँह बाकर महाराज बनारका मुख देखने लगे। उन्होंने कहा, "महाराज, दशमांश तो बहुत अधिक होता है।"

"आप यह आश्चर्य प्रकट करके हमारी दानशीलताके प्रति सन्देह प्रकट कर रहे हैं, पण्डित गणेशदत्तजी।"

"नहीं, नहीं, धर्मावतार, मुझे तो आपमें राजा कर्णका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा है।"

इस चाटुकारीपर महामात्य होंठों ही होंठोंमें मुसकराये।

राजा बनार ठठाकर हँस पड़े। फिर स्थिर होकर बोले, "आपका आश्चर्य उपयुक्त है, धर्माध्यक्ष जो। आप हमारे राजपुरोहित हैं, तब भी हमने आपके हाथोंपर इतना द्रव्य कभी नहीं रखा......महामात्य जी!"

शुक्ल जीने हाथ जोड़कर कहा, "जी, धर्मावतार।"

"धर्माध्यक्ष जीको आज तक हमने साधारण वेतनके अतिरिक्त कुछ दान नहीं दिया। इन्हें राजकोशसे एक सहस्र सोनेके नन्दी प्रस्तुत किये जायँ।"

"जो आज्ञा, धर्मावतार," शुक्लजीने नीचे ही नीचे होंठ भींचते हुए कहा।

इसके बाद महाराज बनार बोले, "इस वर्ष धर्मादेका कितना धन निश्चित हुआ है, महामात्य जी?"

"लगभग पचास सहस्र स्वर्णनन्दी, महाराज।"

"ठीक है। कल प्रातःकाल पाँच सहस्र नन्दी लेकर आप स्वयं उटा-टरियाके लिए प्रस्थान करिए और पण्डित कट्टू मिश्रसे कहिए कि महाराज स्वयं उनके दर्शनार्थ आते, किन्तु कल वसन्तोत्सवका रागरंग काशीमें छाया रहेगा, चारों दिशाओंमें उत्सव होगा, इसलिए यह आकांक्षा फिर कभीके लिए स्थगित करते हैं।"

"जैसी आज्ञा, धर्मदेव।"

"और हाँ," महाराज बनार धर्माध्यक्षकी ओर देखते हुए बोले, "धर्माध्यक्ष जीको एक सहस्र नन्दी परसों प्रातःकाल प्रदान कीजिए। वार्षिक धर्मादेसे एकदम सारी राशि नहीं निकलनी चाहिए।"

"आज्ञा पालन होगी, धर्मावतार।" शुक्ल जी बोले।

मगर पण्डित गणेशदत्तका दिमाग़ आकाशकी ओर उड़ा जा रहा था। आज या परसों इसमें तो कोई अन्तर नहीं था, किन्तु एक सहस्र सोनेके

नन्दी ! उन्हें शंका हुई कि कहीं उनकी तरह महाराजने भी तो आज विजयाका सेवन आवश्यकतासे अधिक नहीं कर लिया है। इसी आशयसे एक परीक्षात्मक दृष्टि उन्होंने महाराजकी मुखमुद्रापर डाली। महाराजने स्वयं उन्हें इसका अवसर नहीं दिया, और उठकर अपने वस्त्र सँभालते हुए बोले, "आप लोग अब काशीका धर्मचक्र चलाइए। हम स्नान करेंगे।"

दोनों अधिकारी सिर नवाकर स्नानागारसे बाहर आ गये।

पण्डित गणेशदत्त जब लौटकर घर पहुँचे, तो उनका मुख फटा पड़ रहा था। बात-बात पर हँसते थे। पालकीसे उतरकर, भीतरकी ओर लपककर ज़ोर-ज़ोरसे पुकारने लगे : "अबे ओ हनुमान, ओ शंकर ! ओ हनुमान !"

आवाज़ हनुमान और शंकरके कानोंतक पहुँची, तो वे लोग शंकरकी पूजाकी सामग्री छोड़कर बाहरकी ओर लपके। बीच चौकमें पण्डित जीसे मुठभेड़ हुई। हाँफते हुए पण्डितजी बोले : "तुम लोग सुबहसे क्या कर रहे थे ? इस तरह ख़ाली बैठनेसे किस तरह तुम लोगोंकी नैया पार लगेगी ? और ये मैले अन्तरवासक पहनकर तुम काशीमें घूमोगे तो मेरी नाक नहीं कटेगी ! तारा कहाँ है ?"

इन सब असम्बद्ध प्रश्नोंका उत्तर स्मरणशक्तिके सच्चे धनी शंकरने दिया : "आज प्रातःकालसे हमलोग लघुकौमुदीके श्लोक रट रहे थे, गुरु जी। ख़ाली बैठनेसे हमलोगोंकी नैया कदापि पार नहीं लगेगी। आप हमें नये अन्तरवासक देंगे, तो हम काशीमें घूमेंगे अन्यथा नहीं घूमेंगे, परन्तु अपने गुरुजीकी नाक कदापि नहीं कटने देंगे, और हमारी भगिनी तारा स्नानागारमें है।"

पण्डित गणेशदत्तने धैर्यके साथ सब उत्तरोंको सुना और अपने शिष्यकी इस अद्भुत उत्तरप्रणालीसे सम्पूर्णतः सन्तुष्ट हो जानेके कारण

वह उन्हें घूरते हुए चुपचाप अंदर पहुँच गये। पीछे-पीछे लपकते हुए शंकर और हनुमान पहुँचे। जो कोठा स्नानागारके नामसे सम्बोधित होता था उसके द्वार पर खड़े होकर पण्डितजीने कहा, "तारा बेटी !"

भीतरसे ताराकी आवाज़ आई, "आप राजभवनसे आ गये, पिता जी ? मैं अभी बाहर आकर प्रसादकी व्यवस्था करती हूँ।"

पण्डित गणेशदत्त हाथमें थमा चादरका पल्ला कन्धेपर डालते हुए बोले, "अरे, तुम लड़कियोंको सदा प्रसादकी चिन्ता रहती है। इसीलिए कला और विज्ञानमें तुम लोग पिछड़ जाती हो। मैं कहता हूँ कि अब कल तक अन्नपूर्णाके प्रसादकी चिन्ता छोड़ो। महाराजने अत्यन्त कृपा करके तुझे नायिकाकी भूमिका प्रदान की है। उसीकी ओर समस्त तन-मनकी चेष्टाएँ उस समय तक लगी रहनी चाहिए, जब तक काशीके समस्त ब्राह्मण-समाजमें तेरी विद्वत्ताके साथ-साथ कलाप्रदर्शनकी श्रेष्ठता सिद्ध न हो जाय।"

"मैं कर्पूरमञ्जरीका अभिनय नहीं करूँगी," भीतरसे ताराका स्पष्ट और सीधा सच्चा उत्तर आया।

उपदेश देकर पण्डित गणेशदत्त अपने कोठेकी तरफ़ जाने ही वाले थे कि ताराका उत्तर सुनकर उनके पाँव जहाँके तहाँ जम गये। आश्चर्यसे स्नानागारके कोष्ठके द्वार देखते हुए वह बोले, "एं ! क्या कहा ? कर्पूरमञ्जरीका अभिनय नहीं करेगी, तो क्या उस विदूषककी मुँहलगी विचक्षणाका करेगी ?"

"मैं इस दृश्यकाव्यके प्रदर्शनमें भाग नहीं लूँगी, पिताजी," भीतरसे और भी स्पष्ट उत्तर आया।

"अरे, दृश्य-काव्यके प्रदर्शनमें भाग नहीं लेगी ! तू तारा ही बोल रही है न ? तेरा मस्तिष्क तो स्वस्थ है न ?" पण्डित गणेशदत्त द्वारके बिलकुल सम्मुख और निकट आते हुए बोले।

"मैं पूर्णतः स्वस्थ हूँ, पिताजी। आप इसके लिए चिन्तित न हों।"

"अरे, अरे! इस लड़कीकी मति न फिर गई है! मैं पूछता हूँ कि जो तू कह रही है वह गम्भीरतासे कह रही है?"

"जहाँ नारीके मानसम्मानका प्रश्न होता है वहाँ वह गम्भीरतासे ही बोलती है, पिताजी," ताराने भीतरसे उत्तर दिया।

"और जहाँ उसके पिता, पुत्र, अथवा पतिके मानसम्मानका प्रश्न होता है वहाँ वह वाचाल हो जाती है!" पण्डित गणेशदत्त कुपित होते हुए बोले। उनके दोनों शिष्य उनका क्रोध उबलता देखकर स्वयं दो-दो क़दम पीछे हटकर खड़े हो गये। पण्डितजीने आगे कहा, "तुझे मालूम है महाराजने नाटकके बाद एक सहस्र मुद्राएँ—स्वर्णमुद्राएँ—देनेका वचन दिया है?"

"उन्हें देना ही चाहिए था," ताराने कहा। "किन्तु क्या आप धन प्राप्त करनेके लिए एक और काम कर सकते हैं, पिताजी?"

"धन प्राप्त करनेके लिए सारा संसार कुछ-न-कुछ करता है। तू मुझसे और क्या काम करनेको कहती है, बता?"

"भगवान् विश्वनाथके मन्दिरमें युगोंसे चढ़ते हुए स्वर्णका जो अर्घ्य हीरों और पन्नोंमें बदलकर राजा बनारसने पाँच बरस पहले मन्दिरमें किसी गुप्त स्थानमें छिपा दिया है वह केवल आपको मालूम है या उन्हें। मन्दिरमें जाकर पशुपतिनाथके लिंगको भग्न कर दीजिए और उस गुप्त धनको वहाँसे निकाल लाइए।"

पण्डित गणेशदत्त यह सुनकर माथा पीटने लगे। "हे भगवान् नील-कण्ठ, मुण्डमाली, त्रिशूलधारी! इस लड़कीकी वाचालताको क्षमा करना," और यह कहकर उन्होंने घबराहटके साथ इधर-उधर देखा। उन्होंने देखा कि उनके शिष्य हनुमान और शङ्करके अतिरिक्त ऊपरके कटहरे पर झुके हुए जगन्नाथ और भोलानाथ खड़े बड़े मनोयोगसे उनके तथा उनकी

पुत्रीके वार्त्तालापको सुन रहे हैं। एकदम चिल्लाकर वह ताराको लक्ष्य करते हुए बोले, "अरी लड़की, अपनी पण्डिताईको रहने दे। जो मुँहमें आता है बक देती है—न समय देखती न स्थान। राजा बनार तेरे लिए पितृतुल्य हैं। उनके सम्मुख अभिनय करना कौन-सा ऐसा गर्हित काम है, जिससे तू इतना बड़ा पातक मेरे मुँहपर पोत रही है?"

"आप वह पातक अपनी आँखोंसे देखना ही चाहते हैं, तो देखिए।" यह कहकर ताराने एकदम द्वारके दोनों पट चौपट खोल दिये।

पण्डित गणेशदत्तकी दृष्टिके ठीक सामने तारा खड़ी थी। झीना और भीगा हुआ अन्तरवासक उसके तनके साथ चिपका हुआ था, जिसमेंसे उसके बदनका प्रत्येक उभार स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। बाल खुले हुए थे। स्निग्ध मुखपर ढुलकती हुई कुछ दो-चार बूँदें उसके वक्षपर गिरकर खण्ड-खण्ड हुई जा रही थीं। अपने पिताके सम्मुख नग्नप्रायः, निर्लज्ज मुद्रासे वह सीधी खड़ी थी।

देखते ही पण्डित गणेशदत्तने 'हे शङ्कर, हे भोला' का आर्त्तनाद करते हुए अपने दोनों हाथोंसे आँखें बन्द कर लीं और अपने प्रकोष्ठकी ओर भागे। उनके आसपास उपस्थित उनके शिष्य अथवा अतिथि कुछ भी न समझ सके कि एकाएक उन्हें यह क्या हो गया! पीछेसे स्नानागारके द्वार पटाक् से बन्द हो गये।

ज़ोर-ज़ोरसे 'शिव-शिव' की रट लगाते हुए पण्डित गणेशदत्त पहले अपने प्रकोष्ठके बन्द द्वारोंसे टकराये। आँखोंसे हाथ हटाकर उन्होंने जल्दीसे द्वार खोले और भीतर जाकर भूमिपर बिछी हुई शीतलपाटी पर गिर पड़े। फिर सिर उठाकर एक आलेमें रखी हुई शिवकी मूर्त्तिके प्रति हाथ जोड़ते हुए वह घिघियाकर बोले, "हे अन्तर्यामी, हे अहिभूषण, यदि भूलसे भी अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त नारी मात्रके प्रति मेरे अन्तर्मनमें पापका उदय

हुआ हो, तो मुझे तू इसी समय, इसी क्षण अपना तीसरा नेत्र खोलकर भस्म कर दे।"

शङ्करका तीसरा नेत्र नहीं खुला। फलतः पण्डित गणेशदत्त भी भस्म नहीं हुए। किन्तु जब वह बहुत देर तक ज़मीन पर पड़े-पड़े रुदन कर चुके, तो उन्होंने कुछ स्थिर होकर अपने शिष्यको पुकारा : "हनुमान !"

हनुमान भयसे काँपता हुआ पास ही कहीं लगा खड़ा था। अपने पीछे खड़े शङ्करको साथ आने का संकेत करता हुआ वह प्रकोष्ठकी ओर दौड़ा, "आज्ञा, गुरुजी ?"

पण्डित गणेशदत्तने अत्यन्त विगलित स्वरमें कहा, "बेटा हनुमान, बेटा शङ्कर, तुम दोनों जुटकर विजया भवानीका अवतरण करो और आज मेरे गलेके नीचे कलसे भी दूने आकारका एक गोला उतार दो—नहीं तो मेरे हाथोंसे आत्महत्याका महापातक हो जायगा।"

"अच्छा, गुरुजी," दोनों शिष्योंके मुँहसे एक साथ निकला।

आधे घण्टे बाद गोला गटककर पण्डित गणेशदत्त आनेवाले चौबीस घण्टोंके लिए अचेत हो गये।

●

: यवनोंका राजदूत :

पण्डित गणेशदत्तके घरमें अगले दिनकी सन्ध्या तक श्मशान-जैसी शान्ति छाई रही। एक दो बार राजभवनसे बुलावे आये, जिन्हें शंकर और हनुमानने अपनी समस्त बुद्धिका प्रयोग करके जैसे तैसे टाल दिया। घरमें भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं हो सकी। यहाँ तक कि जगन्नाथ और भोलानाथको भी बिना एकादशीके ही निराहार व्रत रखना पड़ा। किन्तु ताराके मुखसे क्रोधावेशमें निकली विश्वनाथके किसी गुप्त और अथाह कोशकी बातको लेकर, दोनों भाइयोंमें सारे दिनरात धीमी-धीमी चर्चा चलती रही। क्या इतना बड़ा धनकोश काशीके अत्यन्त प्राचीन किन्तु छोटेसे उस मन्दिरमें हो सकता है, जिसमें शिवजीका पुरातन जर्जर लिङ्ग वर्त्तमान है?

सन्ध्या तक तो महाराज बनारने समझा कि नाटककी तैयारी बहुत व्यस्त भावसे करनेके कारण ही धर्माध्यक्ष उपस्थित नहीं हो सके। किन्तु जब गोधूलि तक भी उनका कोई समाचार अथवा दर्शन प्राप्त नहीं हो सका, तो वह अधीर हो गये। सारे दिनका उत्सव और आह्लाद फीका पड़ा जा रहा था। उधर रंगशाला सज गई थी और वाद्यवादनकी झनकार भी वहाँसे उठने लगी थी।

जब चारों ओर दिया-बत्ती हो गई, तो महाराज बनारने क्रोधके साथ महामात्य रामेश्वर शुक्लको याद किया। पता चला कि वह उटाटरियासे अभी नहीं लौटे। झल्लाकर उन्होंने अपने प्रधान अंगरक्षकको बुलाया और सरोष बोले, "धर्माध्यक्षजीको हमारी आज्ञा सुनाओ कि वह जिस

अवस्थामें भी हों, अभिनेताओं सहित तुरन्त हमारी सेवामें उपस्थित हों। यदि वह न आयें, तो उन्हें बलप्रयोगसे ले आओ।"

कुछ ही देर बाद धर्माध्यक्षके घरके सामने पहुँचकर प्रधान अंगरक्षकके सैनिक शंकर और हनुमानसे वादविवाद करने लगे। दीनहीन शिष्योंने उन्हें बहुत तरहसे समझानेकी चेष्टा की, किन्तु उन्हें उपेक्षाके साथ एक ओर हटाकर प्रधान अंगरक्षक दो सैनिकों सहित घरके भीतर घुस गया।

नीचे चौकमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक कोठेमें, आँखोंके ठीक सामने, शीतलपाटी पर धर्माध्यक्ष दीवारका सहारा लिये पसरे बैठे हैं। प्रधान अंगरक्षकने विनीत भावसे नमस्कार किया और कहा :

"कृपानिधान, महाराजने आपको ससम्मान सेवामें ले जानेके लिए हम लोगोंको भेजा है।"

"ले जाओ," गम्भीर घोषसे पण्डित गणेशदत्तने उनकी ओर उन्नत दृष्टि डालते हुए कहा।

बेचारा अंगरक्षक बड़े असमञ्जसमें पड़ा। यह बात स्वयं अपने ही बारेमें कैसे कही जा सकती है कि 'ले जाओ'? उसने फिर विनीत भावसे दो पग आगे बढ़ते हुए निवेदन किया, "धर्मावतार, आपको बिना आपकी इच्छाके साधारण अपराधियोंकी भाँति ले जाना अनुचित है..."

"तो पालकीमें ले जाओ," महाराजके निर्देशके पालन करनेका निर्देश देते हुए धर्माध्यक्ष बोले।

अंगरक्षकोंके पास अधिक समय नहीं था। प्रधान अंगरक्षक दो क्षण तक किंकर्त्तव्यविमूढ़ रहा। फिर उसने अपने नीचेके सैनिकोंको दरवाज़ेके बाहर पालकी ले आनेके लिए कहा।

कुछ देरमें पालकी आ गई। धर्माध्यक्षने दरवाज़े तक भी स्वयं जानेका कष्ट नहीं किया। वह उस अवस्थामें थे ही नहीं। सैनिकोंने ही बहुत आदरके साथ सँभालते हुए उनके शरीरको उठाया और द्वारके

बाहर ले आये, जब कि घरमें रहनेवाले प्रायः प्रत्येक व्यक्तिने इस विचित्र गमनको फटी आँखोंसे देखा।

पलोथी मारे उसी अवस्थामें वह राजभवनमें वहाँ उपस्थित किये गये, जहाँ महाराज उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें इस अवस्थामें आते देखकर वह और भी अधिक क्रुद्ध हुए। उन्होंने गरज कर कहा, "धर्माध्यक्षजी, कितने बड़े खेदका विषय है कि आप जैसे सम्भ्रान्त, सुयोग्य पण्डित हमारे साथ इस प्रकारका व्यवहार करें, जैसे साधारण अकिञ्चन लोग करते हैं! आपको कितनी बार हमने बुलाने भेजा! रंगशालामें सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। मगर आप......आप कानोंमें तेल डाले बैठे हैं! इसका क्या कारण है?"

धर्माध्यक्षजीको एक पीठिका पर विराजमान कर दिया गया था। उन्होंने सीधी दृष्टि जमाये उत्तर दिया : "राजन्, हम इस राज्यके धर्माध्यक्ष हैं यह सही है। किन्तु स्वयं धर्मके भी हम कुछ हैं। आपने हमें एक ऐसे नाटकको खेलनेका प्रबन्ध सौंपा, जो अत्यन्त हीन, विकृत, वासनापूर्ण रुचिका परिचय देता है..."

"यह आप क्या बक रहे हैं, धर्माध्यक्षजी!" राजा बनार कुपित होकर चिल्लाते हुए बोले।

"हम जो कुछ कह रहे हैं ठीक कह रहे हैं।" धर्माध्यक्षने वैसी ही गम्भीर वाणीमें कहा, "हमारी बेटीने हमें वह अभिनय दिखाया, जिसे आप देखना चाहते थे, और हमारी आँखें लज्जा और क्षोभसे झुक गईं। दो दिन तक हमारे कण्ठके नीचेसे अन्नका दाना नहीं उतरा। आप हमें अपनी इस तुच्छ अवज्ञाके लिए जो दण्ड देना चाहें अवश्य दीजिए। हम उसे धर्मके नाते सहन करेंगे और गौरवका अनुभव करेंगे......"

महाराज बनार अभी उत्तर देनेके लिए दाँत पीस ही रहे थे कि उसी

समय महाप्रतिहारने आकर निवेदन किया, "महाराज, महामात्य जी यात्रासे लौट आये हैं और सेवामें उपस्थित होना चाहते हैं......"

किन्तु महामात्यजी महाप्रतिहारके पीछेसे ही आते हुए दिखाई दिये और महाराजको अनुमति देनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ा। कक्षमें आकर महामात्यने सिर झुकाया और निवेदन किया : "अन्नदाताकी जय हो। उटाटरियाके महान् तपस्वी कट्ठू मिश्रने पाँच सहस्र स्वर्णमुद्राओंको भी तिनकेकी तरह ठुकरा दिया। आपकी सेवामें उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक सन्देश भेजा है कि निर्धन ब्राह्मणोंको दान देनेसे पहले राजा उन प्रजाजनों के प्रति अपना वह महान् कर्त्तव्य निभायें, जिसके लिए वह स्वयं दानके धन पर जीवित हैं।"

"हे भगवान्!" महाराज बनारने क्रोधसे भूमि पर पैर पटकते हुए कहा। "क्या कट्ठू मिश्र जैसे महात्यागी व्यक्तिने हमें ऐसे वचन कहे?"

अभी महामात्यजी कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि वापस लौटकर गया हुआ महाप्रतिहार बहुत घबराहटके साथ भागा हुआ आया और हाथ जोड़कर बोला, "अन्नदाता, यवनोंका दूत आया है!"

महाराज बनारके मुँहसे सहसा ही निकला, "यवनोंका दूत! किन यवनोंका दूत?"

"महाराज, वह अपनेको धर्मविजयी सालार मसूद ग़ाज़ीका राजदूत बताता है और इसी समय, बिना एक पलकी भी देर किये, आपकी सेवामें उपस्थित होनेकी कामना करता है।"

महाराज बनारने महामात्यकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टिसे देखा। वह समझना चाहते थे कि सालार मसूदका राजदूत उनके पास किस उद्देश्यसे आया होगा। महामात्यने उनकी ओरसे महाप्रतिहारको आज्ञा दी कि वह तुरन्त राजदूतको सेवामें उपस्थित करे।

महाप्रतिहारके जानेपर महाराज बनारने किञ्चित् घबराहटके साथ महामात्यसे पूछा, "इस दूतके आनेका क्या अर्थ हो सकता है ?"

"विपत्ति आना चाहती है," उत्तरमें महामात्यके स्थानपर अलग बैठे धर्माध्यक्ष बोले। "राज्यमें पापाचार बढ़ रहा है, महाराज। यह दूत उसकी पूर्वसूचनाके लिए आया है।"

महामात्यने कहा, "महाराज, ऐसा प्रतीत होता है कि आपसे कल रातको ज्योतिषप्रवर सिद्धनाथने जो कुछ कहा था, यह विपत्ति उसीका यथार्थ पूरक है। देखिए वह आ रहा है......"

एक विशालकाय यवन महाप्रतिहारके पीछे चला आ रहा था। वह चलता-चलता अपनी दाढ़ीपर हाथ फेर रहा था। कमरपेटीमें दोनों ओर छोटी और भारी शमशीर लटक रही थी। पीठके पीछे ढाल बँधी थी, जो सामनेवालोंको दिखाई नहीं पड़ रही थी। पैरोंमें ढीले पाजामेके ऊपर चट्टियोंके फ़ीते कसे हुए थे और बदनपर चमड़ेकी बनी कामदार जाकट थी। हाथमें एक तेज़ नोक वाला भाला था।

कक्षमें आकर पहले उसने एक निगाहमें कक्षकी स्थिति और उसके भीतरके व्यक्तियोंका जायज़ा लिया। फिर भालेको ऊँचा करके अभिवादन स्वरूप हाथ उठाया और बोला :

"ग़ज़नीका गौरव, इस्लामका दीपक, ग़ाज़ी सालार मसूद बिन सालार साहू बनारसके राजाको सलाम कहता है।"

"स्वीकार है," महामात्यने उस दैत्य-जैसे इन्सानको तीव्र दृष्टिसे देखते हुए कहा।

"ग़ज़नीके गौरवने अपनी अत्यन्त विनम्र वाणीमें कहा है कि वह मित्रोंका मित्र है, इस्लामके दुश्मनोंका दुश्मन है। सिरपर कफ़न बाँधे पचास लाख सिपाहियोंके साथ वह धर्मयुद्धके उद्देश्यसे ग़ज़नीसे निकला है। उसने देशपर देश जीते हैं, काफ़िरोंके नगरपर नगर उजाड़ दिये हैं।

जहाँ-जहाँसे वह गुज़रा है इस्लामके दुश्मनों और सच्चे धर्मको न मानने-वाले लोगोंसे धरती पाक हो गई है। उन जगहों पर इस्लामके चिराग़की रोशनी फैल गई है। वही प्रकाश अब बनारसके काफ़िर इलाक़ेपर किरणें फेंकना चाहता है। बनारसका राजा चाहे, तो इस्लामके चाँदकी उन किरणोंको होंठोंसे चूम ले, नहीं तो वे ही किरणें तलवारोंकी नोक बनकर काफ़िरोंके कलेजोंमें पेवस्त हो जायँगी और क़यामतके दिन अल्लाहके दरबारमें उन काफ़िरोंका हिसाब होगा, और उन्हें दोज़खकी जलती हुई आगमें झोंक दिया जायगा। बनारसका राजा जवाबमें क्या कहना चाहता है यह जाननेके लिए जिहादके मतवाले अपने अरबी घोड़ोंकी पीठपर बेचैनीके साथ मचल रहे हैं।"

यवन राजदूतके तीनों श्रोता स्तब्ध और चित्रलिखितसे खड़े थे। मगर महाराज बनारने प्रयत्न करके अपने मनके भावोंको मुखपर प्रकट नहीं होने दिया। उन्होंने महामात्यकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें कहा, "महा-मात्यजी, हमारा उत्तर इससे कह दीजिए।"

महामात्यजी हँसते हुए बोले, "मित्र, तुम्हें यहाँ की बोली किसने सिखाई है?"

"तिलक सरदारने," यवन राजदूतने उत्तर दिया। "मगर यह ग़ाज़ी-बहादुरके सवालका जवाब नहीं है, मन्त्री महाराज।"

"मित्र," महामात्यने मुसकराते हुए कहा, "तुम्हारा सवाल क्या कोई ऐसा सवाल है, जिसका जवाब तुरन्त खड़े-खड़े दिया जा सकता हो? हम लोगोंको काशीके महापण्डितोंकी एक विशाल सभा करनी पड़ेगी और उनके सामने तुम्हारे ग़ाज़ी बहादुरका यह नेक इरादा रखना पड़ेगा। जैसी उन लोगोंकी इच्छा होगी वैसा ही उत्तर आपको दे दिया जायगा, या उसे देनेके लिए हमारे यहाँसे हमारा दूत जायगा।"

"तब उस उत्तरको सुननेके लिए मुझे ठहरनेका हुक्म है," यवनदूत

ने उसी भाँति सन्तोषजनक वाणीमें कहा। "याद रखिए, और उन मूर्ख पण्डितोंसे भी कह दीजिए, कि हमारे सवालका एक ही जवाब मुमकिन है। दूसरा जवाब मिलने पर जवाब देनेवाले ही इस दुनियासे नेस्तनाबूद हो जाते हैं।"

"इस बातको हम याद रखेंगे," महामात्यने कहा। "और इस बातको भी कि आप एक बहुत वीर पुरुष हैं, जो विदेशी राजाओंके स्वभावको जाने बिना ही उद्दण्डतापूर्ण रीतिसे अपने ग़ाज़ी सेनापतिका सन्देश सुनाते हैं।"

"इसलिए कि," यवनोंके दूतने साभिमान कहा, "मेरे बाजुओंके भीतर भी उसी तरहका ख़ून खौल रहा है, जो ग़ाज़ी सालार मसूद बिन सालार साहूके पुट्ठोंमें है। आपके यहाँका बड़ा-से-बड़ा योद्धा अगर मुझसे शमशीर लड़ाकर ज़िन्दा बच जाय, तो मैं अपनी नाक अपने ही उस्तरेसे काटनेके लिए तैयार हूँ।"

"इसके लिए सोचा जायगा," महामात्यने हँसकर कहा। "आप मेरे साथ आकर कुछ देर आराम कीजिए और अपनी थकान उतारनेके लिए धर्मप्रसारका ध्यान छोड़कर कुछ खानपान कीजिए। इसके बाद आपको कम-से-कम कल तक ठहरकर हमारे पण्डितोंके निर्णयकी प्रतीक्षा करनी है।"

"मुझे मंजूर है," यवन राजदूतने कहा और वह सैनिक रीतिसे मुड़कर तुरन्त कक्षसे बाहर हो गया। महाराज बनारको हाथसे स्थिर और शान्त रहनेका संकेत करते हुए महामात्य रामेश्वर शुक्ल भी बाहर चले गये। उन दोनोंके जानेके बाद महाराज बनारने धर्माध्यक्षकी ओर देखते हुए एक लम्बी निःश्वास छोड़ी। फिर वह बोले :

"धर्माध्यक्ष जी, हमें ऐसा लगता है कि आप ही की बात सच है। राज्यमें ही पापाचार नहीं बढ़ रहा है, अपितु स्वयं हमारे हृदयकी गहराईमें भी पाप पल रहा था। हम अत्यन्त लज्जाके साथ यह भी स्वीकार करते हैं

कि नाटक खेलने-खेलानेके बहाने सम्भवतः हमारे अन्तर्मनके भीतरसे वासना सिर उठा रही थी। एक साथ अनेक विपत्तियोंने चारों ओरसे घिर कर हमें सहसा ही चेता दिया है। महामना कट्ठ मिश्रने हमारे धनको छूना भी स्वीकार नहीं किया—सम्भवतः इसलिए कि हम धर्मादेके धनसे दान करनेका दम्भ कर रहे थे। आपने हमपर विश्वासघातका आरोप लगाया, इसलिए कि हमने आपकी पुत्रीको अपनी पुत्री नहीं समझा। यवनोंके सेनापतिने दूरसे फेंक कर हमारे मुँहपर जूता मारा, इसलिए कि हमने उसके चढ़ आनेका समाचार सुन कर भी अनसुना कर दिया और हम भूल गये कि जिस व्यक्तिने हमें यह समाचार ला कर दिया था वह ज्योतिष-शास्त्रमें पारंगत है। किन्तु अब हम क्या करें? कौन सा पश्चात्ताप ऐसा है, जो हमें इस सहसा आई हुई विपत्तिसे उबार दे?—बताइए, धर्माध्यक्षजी, बताइए ...जब मनुष्य साहस खो बैठता है, तब धर्म ही उसे कर्त्तव्य-पथपर आरूढ़ करता है..." कहते हुए महाराज बनार धर्माध्यक्षके कन्धोंको झिंझोड़ने लगे।

उनके हाथोंको हटाते हुए, विजयाके प्रभावका अनुभव करते हुए भी धर्माध्यक्ष पण्डित गणेशदत्त स्थिर और शान्त वाणीमें बोले, "महाराज, मानसिक नहीं, यथार्थ प्रायश्चित्त कीजिए। आज तक कोई ब्राह्मण ऐसा नहीं हुआ, जिसने राजाका दान ग्रहण न किया हो। महामना कट्ठ मिश्रसे स्वयं जाकर पूछिए कि वह भोले शंकरके नेत्रोंमें क्या देख रहे हैं, और किस लिए आपके दानको स्वीकार नहीं करना चाहते। उन्हें अपना सम्पूर्ण राज्य भी आपको दान देना पड़े, तो उन्हें प्रसन्न कीजिए। उनके घरके शिवालयमें शंकरकी जो मूर्त्ति है वह काशीके विश्वनाथसे भी अधिक पूजनीय है क्योंकि उसे युगोंसे तपस्याजनक भक्ति प्राप्त हुई है। मेरा ध्यान छोड़ दीजिए, मैं अपनी पुत्रीकी ओरसे आपको क्षमा करता हूँ। हाँ, प्रबोध मिश्रके सुपुत्र ज्योतिषाचार्य पण्डित सिद्धनाथको तुरन्त बुला भेजिए। उसने आपको

विपत्तिकी पूर्व सूचना दी थी। वह आपको इससे उबरनेकी विधि भी बतायगा। नहीं तो सर्वनाश निश्चित है। सालार मसूदके सवालके जवाबमें काशीके पण्डितोंका क्या निर्णय होगा यह तो निश्चित ही है। इसके लिए सभा सम्मेलनकी आवश्यकता नहीं है।"

राजा बनारने इस उपदेशको बहुत ध्यान लगाकर सुना। इसके बाद उन्होंने क्षुब्ध किन्तु दृढ़ स्वरमें कहा, "ऐसा ही होगा, धर्माध्यक्ष जी। पण्डित सिद्धनाथका मैंने अपमान किया था। यदि उसे ज़रा भी अभिमान हुआ, तो वह सम्भवतः मेरे बुलानेसे नहीं आयगा। क्या आप मेरे लिए, काशीके लिए, धर्मकी रक्षाके लिए, स्वयं उसे यहाँ ले आनेका कष्ट कर सकते हैं?"

"अवश्य, महाराज," पण्डितजी बोले। "मैं तो अन्ततः आपका सेवक ही हूँ। आप निश्चिन्त रहिए। सिद्धनाथ मेरे कहनेसे अवश्य आयगा।"

राजा बनारको आश्वस्त करके धर्माध्यक्ष जल्दीसे जल्दी सिद्धनाथके घर पहुँचे। सालार मसूदके दूतकी बात सुनकर वह प्रसन्न हो गया। शायद इस अवसरके लिए ही उसने बहुत दिनोंसे कोई खिचड़ी पका रखी थी। एक शिवनामी दुपट्टा, माथेपर त्रिपुण्ड और सिरपर पगड़ी धारण करके वह चलनेको तैयार हो गया और धर्माध्यक्षसे बोला, "आप मेरे पितातुल्य हैं, पण्डितजी। आपसे कहनेमें संकोच क्या? आजकी रातके लिए आपको ताराको मेरे घर छोड़ना होगा।"

पण्डित गणेशदत्त उसका मुहँ ताकने लगे। आश्चर्यसे वह बोले, "तारा यहाँ क्या करेगी, बेटा?"

"ताराको मेरे एक अनुष्ठानमें योग देना है, पण्डित जी। जिस तरह आपको अपनी बेटीपर विश्वास है, उसी प्रकार बेटेपर भी होना चाहिए। यदि वह नहीं आई, तो कियाधरा सब चौपट हो जायगा।"

पण्डित गणेशदत्त यद्यपि कुछ भी नहीं समझ पाये, किन्तु उन्होंने जो स्वीकृति दी उससे सिद्धनाथके प्रति उनके असीम विश्वास और प्रेमकी भावनाका पता चलता था। उन्हें भेज कर सिद्धनाथने अपनी बिल्लीके सम्बन्धमें गदाधरको कुछ आवश्यक आदेश दिये और पालकीमें जा बैठा।

पालकी यथासमय राजभवन पहुँच गई। सबसे पहले महामात्यसे उसकी भेंट हुई। उन्होंने सिद्धनाथके कन्धेपर हाथ रखकर कहा, "ज्योतिषप्रवर, मैं तुम्हें पहचानता हूँ। महापण्डित प्रबोध मिश्रके घर तुम्हें अनेक बार अध्ययन करते देखा है। सुना है कि तुम जानते हो सालार मसूदके इस दूतके यहाँ आनेका क्या परिणाम होगा?"

"अवश्य ही जानता हूँ," सिद्धनाथने समभाव से कहा। "परिणाम यह होगा कि यवनोंका आक्रमण काशीपर नहीं होगा...यदि..."

"यदि क्या?" आशंकासे महामात्यने पूछा।

"यदि काशीके विद्वत्समाजमेंसे किसीने अब तक देशद्रोहकी भावनाको अपने हृदयमें आश्रय न दिया हो। यही वह तत्त्व है, जिससे भारतको भय है, और जिसके अभावमें हमने अपनी संस्कृतिको अब तक झञ्झावातोंमें भी बचाये रखा है।"

महामात्यके मुखपर मुसकराहट आ गई। "आप महाराजसे मिल लीजिए। मुझे विश्वास है कि काशीमें ऐसा कोई धर्मद्रोही नहीं है। काशीकी यह महानगरी सदासे सुरक्षित रही है—अब भी रहेगी। मुझे आपके वचनोंपर ऐसा ही विश्वास है, जैसा कभी महापण्डित प्रबोध मिश्रके वचनोंपर था। आइए, महाराज आपसे मिलनेके लिए आतुर हैं। जल्दी ही हमें कोई न कोई निर्णय कर लेना है।"

महाराज बनारने सिद्धनाथको देखकर आन्तरिक लज्जाका अनुभव किया। किन्तु यह समय ऐसा नहीं था, जिसे व्यर्थके पश्चात्ताप-प्रदर्शनमें

खोया जाता। उन्होंने कहा, "युवक, तुम्हारी ही बात रही। हमारा विचार भ्रम बनकर रह गया। तुम जानते हो कि काशी राज्यके पास इतनी शक्ति नहीं है कि वह डटकर यवनोंका सामना कर सके। हम तुम्हारी वह शक्ति देखना चाहते हैं, जिसके बल पर तुमने एक छोटा-सा संकल्प किया था।"

सिद्धनाथने पहलेकी ही भाँति छाती पर हाथ बाँधकर कहा, "महाराज, यवन सेनापतिको भेंट भेजनेके लिए ग्यारह स्वस्थ अरबी घोड़े चाहिए।"

"अरबी घोड़े!" महामात्य आश्चर्यसे बोले, "क्या हम लोग आक्रान्ताओंको अरबी घोड़े भेजेंगे?"

"जी, महाराज, काठियों सहित," सिद्धनाथने उत्तर दिया। "वे काठियाँ विशेष रूपसे आज ही बननी चाहिए। उनकी ऐसी सज्जा और चमकदमक होनी चाहिए कि दर्पणवत् उनमें मुँह दिखाई दे।"

उपस्थित जनोंमेंसे सिद्धनाथके अतिरिक्त सभी एक दूसरेके मुँहकी ओर देखने लगे। महाराज बनारने कहा, "हम तुम्हारा आशय नहीं समझे? ये काठियाँ आज ही क्यों तैयार होनी चाहिए? क्या हमारे राज्यमें ग्यारह घोड़ोंके लिए उत्तम काठियाँ भी नहीं मिल सकतीं?"

"जी हाँ, महाराज, वे काठियाँ नहीं मिल सकतीं, जो सालार मसूद जैसे धर्मान्ध सेनापतिको काशीकी ओर प्रस्थान करनेके स्थान पर ग़ज़नीकी ओर ले जायँ," सिद्धनाथने कहा। "वे काठियाँ जादूकी काठियाँ होंगी, महाराज।"

"ओह! जादूकी काठियाँ होंगी? तब तो महामात्य जी, इस युवकके निर्देशके अनुसार वे काठियाँ आज ही रातको तैयार करानी हैं।"

"जो आज्ञा, अन्नदाता," रामेश्वर शुक्लने कहा।

सिद्धनाथने निवेदन किया, "दूसरा निवेदन यह है, महाराज, कि उस यवन राजदूतको रात्रिके समय मेरे छोटेसे घरमें विश्राम करनेका अवसर दिया जाय।"

"क्यों, क्या तुम उसकी हत्या करना चाहते हो?" महाराजने इसका भी आशय न समझते हुए कहा।

"राजदूतकी हत्या हमारे देशके राजधर्ममें निषिद्ध है, महाराज," सिद्धनाथ बोला। "मैं उस व्यक्तिसे केवल इतना पूछना चाहता हूँ कि यवन सेनामें कितने जन हैं, जिनका काल सिरपर नाच रहा है।"

"ओह!" महाराज बनारने फिर आश्चर्यसे उस युवककी आकृतिको घूरते हुए कहा, "क्या तुम समझते हो कि यवन सेनापतिका भेजा हुआ दूत ज़बानका इतना कच्चा होगा?"

सिद्धनाथ मुसकराया। उत्तरमें उसने कहा, "उसकी ज़बान कच्ची न हो, महाराज, किन्तु यदि हमारे कान पक्के हैं, तो यह भेद बड़ी आसानीसे मालूम किया जा सकता है।"

महामात्यने जल्दीके विचारसे कहा, "यह काम तो बड़ी सुविधासे हो सकता है। हमें उसे अतिथिशालामें ठहराना था, सो आपके यहाँ ठहराया जा सकता है।"

"यह भी स्वीकार है," महाराज बनार बोले। "तुम्हें और कुछ कहना है?"

"जी हाँ," सिद्धनाथ बोला। "महाराज गाङ्गेयदेवके पास यह समाचार पहुँचने तक सम्भव है हम पर आक्रमण हो जाय। इसलिए सतरखकी गोगल भुक्तिके मुखिया नरहरि चौधरी और बालारुखके बप्पा चौधरीके पास केवल इतना समाचार भेज दिया जाय कि सूर्यग्रहणमें अब अधिक देरी नहीं है,"

"इतनी छोटी हैसियतके आदमी इतने बड़े काममें क्या योग देंगे?" महाराज बनारने पूछा।

सिद्धनाथ इस बार सचमुच हँस पड़ा। उसने कहा, "महाराज, काशीकी रक्षामें जो कुछ योग देना है वह छोटे आदमियोंको ही देना है। नरपतिकी पदवीसे आपका काम तो केवल उन्हें राह दिखाना है।"

"महामात्य जी," राजा बनारने फिर कोई प्रश्न न करके आज्ञा दी, "आदेश पालन किया जाय।"

महामात्य जीने सिर झुकाया। सिद्धनाथने अभिवादन किया और महाराजसे जानेकी आज्ञा माँगी।

रामेश्वर शुक्ल उसे उसी समय यवन राजदूतके पास ले गये। एक कक्षमें बड़े आरामसे पैर फैलाये, ज्योंका त्यों अपनी पोशाकमें सजाधजा, वह व्यक्ति अपने चारो ओर रखे फलों व मिठाइयोंके थालों पर हाथ साफ़ कर रहा था। दरवाज़ेसे सिद्धनाथ और शुक्लजीको प्रवेश करते देखकर उसने हाथ ज़रा-सा तंग करनेके अतिरिक्त अन्य कोई उद्विग्नता प्रकट नहीं की।

दो चार लड्डू खा लेने तक भी जब आनेवालोंमेंसे कोई कुछ नहीं बोला, तो उसकी दृष्टि सिद्धनाथकी चट्टियों और धोतीको देखती हुई उसके मुँह पर गई। सिद्धनाथ बड़े मनोयोगसे, बिना पलक झपकाये उसकी चेष्टाका अध्ययन कर रहा था। दृष्टिसे दृष्टि टकरानेपर भी सिद्धनाथकी पलकें नहीं झपकीं, तो दूत महाशयने कुछ बेचैनी दिखाई। "यह आदमी कौन है?" उसने गरज कर पूछा।

रामेश्वर शुक्लने केवल सिद्धनाथकी ओर देख भर लिया। दूतकी बातका उत्तर उन दोनोंमेंसे किसीने भी देनेका कष्ट नहीं किया। सिद्धनाथ एकटक उसकी ओर देखता रहा। फिर उसकी निगाह खानेपीनेकी उस सामग्री पर गई, जो चारो ओर फैल रही थी। फलोंके थाल पर जब उसकी नज़र गई, तो वह होंठों ही होंठोंमें मुसकराया। उसने महामात्यकी ओर देखकर कहा, "महामात्यजी, यह आदमी नाई है।"

अपने प्रश्नका यह विचित्र उत्तर सुनकर वह आदमी भौंचक्का-सा उन दोनोंको बारी-बारीसे देखने लगा। कुछ रुककर वह सहसा ही उछलता हुआ चिल्लाया: "ख़ुदाकी क़सम, यह शख़्स तो नजूमी मालूम होता है।"

रामेश्वर शुक्ल डर रहे थे कि कहीं यह आदमी नाई न हुआ, तो

बेमतलबका बिगाड़ पैदा होगा। मगर सुनकर उन्होंने भी आश्चर्य प्रकट किया और बोला, "महाशय, आपसे मिलिए। आप ज्योतिषाचार्य पण्डित सिद्धनाथजी शास्त्री हैं। चाहते हैं कि आपको अपने घर ठहराएँ, जिससे ग़ज़नीके नजूमियोंके बारेमें आपसे कुछ मालूमात कर सकें। अगर आपको कुछ एतराज़ न हो, तो आजकी रात आपके घर पर ही आतिथ्य स्वीकार कीजिए।"

"वल्लाह!" यवनोंका राजदूत अपना एक हाथ हवामें उठाकर बोला, "तो आप ज्योतिषी हैं! ज़रूर, ज़रूर, बनारसमें आकर आप जैसे लोगोंसे मुलाक़ात होनेका मौक़ा मिले, तो क्या कहने हैं! हमें कोई एतराज़ नहीं।" फिर उसने कुछ संकोच अनुभव करते हुए कहा, "आइए, आइए, तशरीफ़ रखिए। कुछ हिस्सा बँटाइए।"

सिद्धनाथने मुसकरा कर कहा, "माफ़ कीजिए, घर पर मेरा शिष्य भूखा होगा। अगर मैंने उसके सामने भोजन न कर लिया, तो वह ग़रीब भूखा ही बना रहेगा। इसकी भी कोई चिन्ता नहीं, लेकिन खानेपीनेकी अधिकांश सामग्री क्योंकि वही निबटाता है, इसलिए वह सब-का-सब भोजन व्यर्थ ही फेंकना पड़ेगा।"

"अच्छा, अच्छा," नाईने इस बातको हँसीमें उड़ाते हुए फिर अपने कामकी ओर ध्यान लगाया।

उससे इजाज़त लेकर दोनों बाहर आ गये। शुक्लजीने पूछा, "भला, आपको यह कैसे पता लगा कि वह आदमी नाई था?"

सिद्धनाथ हँसकर बोला, "उसने बड़े-बड़े फलोंको काटनेके लिए थालमें उस्तरा रख रखा था। नाई सब चीज़ें छोड़कर कहीं जा सकता है, मगर उस्तरेका त्याग नहीं कर सकता।"

महामात्य इस पर हो-हो करके दोहरे हो गये।

: देवगुरुकी भार्या :

वही कक्ष था। वे ही चाँदीकी मशालें कक्षमें जल रही थीं। वही पीछेकी साफ़ और चिकनी दीवार थी। जिस स्थान पर इस समय यवन अतिथिके लिए पलंग बिछा था उसी स्थान पर पहले वह तख़्त पड़ा था, जिस पर शास्त्रार्थकी इच्छासे आये कट्टू मिश्रके दोनों पुत्र बैठे थे और सिद्धनाथसे वचन लेकर गये थे कि जब तक वे संसारमें विद्यमान हैं तब तक वह पण्डित गणेशदत्तकी पुत्रीसे अपना विवाह नहीं करेगा। उस चिकनी दीवारके ठीक सामने, अतिथिके पलंगसे इस तरफ़ वही पीठिका रखी थी, ज़िस पर सिद्धनाथ अपने पूर्व अतिथियोंसे वार्त्तालाप कर चुका था। अब भी वह उस पर बैठा था। अब भी वह काली बिल्ली उसके कन्धे पर चढ़ी बैठी थी और अब भी गदाधर दरवाज़ेके पास निश्चल काष्ठ-प्रतिमाकी भाँति खड़ा था। यवन राजदूत बार-बार उसके बदनको देखता था और अपने मुक़ाबलेमें उसकी शारीरिक शक्ति कूतनेका प्रयत्न कर रहा था। सहसा ही ठकाहा लगा कर वह हँसा और बोला :

"सिद्धनाथ साहब, आपका यह नौकर तो पहलवान मालूम होता है।"

"मगर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि बनारसमें अव्वल दरजेका पहलवान होते हुए भी यह एक मामूली कुत्तेकी तरह मेरी आज्ञाओं-का पालन करता है। सच पूछा जाय, तो जादूके सामने संसारकी बड़ी-से-बड़ी शक्ति हेच है..."

"अक्खाह!" अतिथि-सत्कारके निमित्त सामने रखे हुक्केकी नलीमें दम लगाते हुए और खुशबूदार धुआँ हवामें छोड़ते हुए नाईने कहा,

आपके कहनेसे पता चलता है कि आप नजूमी होनेके साथ-साथ कोई छोटेमोटे जादूगर भी हैं ! अपना कोई कमाल दिखाइए तो सही, जनाब।"

"थोड़ेसे मन्त्र मैंने सिद्ध किये हैं," सिद्धनाथने कहा। "मगर ग़ज़नी के जादूगरोंके मुक़ाबलेमें मेरा जादू क्या है—क्या हो सकता है ! हम लोगोंमें एक कहानी कही जाती है, शायद आपने कभी उसे सुना हो।"

"फरमाइए, कैसी कहानी ?" उत्सुक वाणीमें नाईने पूछा।

"हमारे यहाँ एक तान्त्रिक रानीकी कहानी आती है, जिसने अपने प्रेमीको तोता बनाकर एक पिंजरेमें रख छोड़ा था। जब राजा महलमें नहीं होता था, तो वह उसे आदमज़ाद बना देती थी और वह एक सुन्दर राजकुमारके रूपमें बदल जाता था। जब राजा आता था, तो वह उसे फिरसे तोता बनाकर पिंजरेमें बन्द कर देती थी।"

"वाह ! वाह !" नाईने चिल्लाकर कहा, "लाजवाब कहानी है !"

"जी हाँ," सिद्धनाथने मुसकराते हुए कहा। "लेकिन कहानियाँ तो कहानियाँ होती हैं। वे सच नहीं होतीं...आपके इस सेवकके स्वर्गीय पिता पण्डित प्रबोध मिश्रने अपना सारा जीवन इस विद्याको सीखनेमें लगा दिया।"

"और उन्हें यह इल्म आ गया ?" आश्चर्यसे अभिभूत होकर अतिथिने हुक्केकी निगाली मुँहसे निकालकर पूछा।

"आ तो गया, साहब," सिद्धनाथ बोला, "मगर अगले दिन ही आसमानसे उनका निमन्त्रण भी आ गया। बस, तीन साँसें रह गई थीं, जब उन्होंने अपना सिद्ध किया हुआ वह मन्त्र अपने पुत्रको यानी मुझे हस्तान्तरित किया..."

"वल्लाह ! क्या खूब ! तो क्या आप परिंदेको आदमीमें और आदमीको परिंदेमें तबदील कर सकते हैं ? ख़ुदाकी क़सम, अगर आपको यह इल्म आता होगा—जो अब तक सिर्फ़ दास्तानोंमें ही मिलता रहा है—तो सच

कहता हूँ कि आपके पायेका जादूगर सारी दुनियामें भी कोई नहीं मिलेगा, ग़ज़नी तो रही कहाँ।"

सिद्धनाथ ठठाकर हँसा, जब कि हँसीकी कोई ख़ास वजह नहीं थी। उसने कहा, "पक्षीको तो नहीं, किन्तु मैं चार पैरवाली बिल्लीको दो हाथ और दो पैरवाली सुन्दरीके रूपमें परिवर्त्तित कर सकता हूँ।"

"अहः! अहः!" एकदम पलोथी मारकर बैठते हुए राजदूतने हैरतसे अपने मेज़बानकी शकल देखकर उस बिल्लीकी तरफ़ देखा, जो उसके कन्धेपर बैठी बड़े मनोयोगसे मेहमानके चेहरेको देख रही थी। अपनी ओर उसे देखते देखकर बिल्लीने दाँत निकाले और हौले-हौले गुर्राई। नाईने कहा, "यानी...आपका मतलब है कि यह बिल्ली, जो आपके कन्धेपर बैठी है, असलीयतमें कोई नाज़नीन है। ख़ुदाकी क़सम, हज़रत महमूद ग़ाज़ीकी पाक दाढ़ीके पाँच बाल आजतक मेरे पास सुरक्षित हैं। मैं वे पाँचों बाल बिना किसी क़ीमतके आपकी नज़र करनेको तैयार हूँ, अगर आप इस इल्मका कमाल दिखा दें। एक-एक बाल एक-एक हज़ार दीनारकी हैसियत रखता है, जनाब!"

सिद्धनाथने कहा, "देखिए, विद्या तो विद्या ही है। वह दिखानेके लिए ही होती है। लेकिन मेरा ख़्याल है कि वह सुन्दरी आपको देखकर लज्जित होगी। अभी देखिए, किस तरह यह मेरे कन्धेसे चिपटी बैठी है।"

नाई महाशयने बड़े कुतूहलके साथ फिर उस बिल्लीका निरीक्षण करना आरम्भ किया। बिल्ली अपने दाँत निकाल-निकाल कर हौले हौले गुर्राती रही। सहसा ही फिर उछलकर यवनदूत बोला, "ख़ुदाकी क़सम, यह तो जिन्दा जादू है! इस बिल्लीकी आँखोंमें वाक़ई किसी ख़ूबसूरत नाज़नीनकी अदा नज़र आती है। मेज़बान साहब, हमारी खातिर यह जादू तो आप हमें ज़रूर दिखाइए।"

"तो ज़रूर देखिए," कहकर सिद्धनाथ खड़ा हो गया और उसने तेज़

आवाज़में अपने अनुचरको पुकारकर कहा : "गदाधर, मशाल लाओ।"

"जो आज्ञा, स्वामी," गदाधरने अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा और वह दीवार परसे चाँदीकी मशाल उतारनेके लिए लपका। कुछ ही देरमें स्वामी और सेवक ऊँचे स्वरोंमें विशुद्ध संस्कृतके श्लोक तेज़ीके साथ उच्चारण करने लगे। सिद्धनाथने बिल्लीको उतारकर अपने हाथोंमें सँभाल लिया और गदाधर सहित पलंगके उस भागकी ओर बढ़ा, जिस तरफ़ पीछेवाली चिकनी दीवार थी।

नाई उत्सुकताके मारे साँस रोककर पलंगके ऊपर खड़ा हो गया। आँखें आश्चर्यसे दीवारकी ओर घूरने लगीं। सिद्धनाथ और गदाधरने ज़रा झुककर अपनी मुद्राएँ विकृत बना लीं। मन्त्रपाठ और भी ज़ोरके साथ होने लगा और सहसा ही सिद्धनाथने गर्जना की :

"गदाधर, मन्त्र फूँको......!"

कहनेकी देर थी कि गदाधरने मशालको एक बार ऊपर-नीचे तेजीके साथ घुमाया। एक मात्र दर्शककी दृष्टि भी मशालके साथ-साथ घूम गई। उसी समय मशाल ज़मीनके साथ छू गई और सिद्धनाथने बिल्लीको ज़ोरके साथ दीवारकी तरफ़ फेंका। धुएँकी एक ऊँची और चौड़ी दीवार कक्षके फरशसे ऊँचे उठी और छतको छूने लगी। बिल्लीने दीवारके साथ टकराकर एक ज़ोरका आर्त्तनाद किया।

नाईने कलेजेपर हाथ रखा। आँखें फट गईं। कुछ ही देरमें धुआँ फैलकर सारे कक्षमें वितरित हो गया। उसकी घनी दीवार सामनेसे हट गई और सम्मानित अतिथिने विस्फारित नेत्रोंसे संसारका एक ऐसा आश्चर्य देखा, जो उसने पहले कभी न देखा था, न सुना था।

दीवारके पास, उसी स्थानपर, जहाँ बिल्लीको फेंका गया था, एक नारीका शरीर अपने चारों हाथ-पैरोंपर स्थित था। मुँहके स्थानपर फैले

हुए सिरके बाल नजर आ रहे थे। सिद्धनाथ और गदाधर बराबर मंत्रपाठ किये जा रहे थे। तभी सिद्धनाथ चिल्लाया : "तारा !"

नारीशरीर तनिक हिला। बालोंको एक ज़ोरका झटका देकर उसने पीछेकी ओर फेंका और उस समय धड़कते हुए कलेजेके साथ नाईने देखा कि उस युवतीकी आँखें भी बिल्लीकी तरह चमकदार और तीव्र किरणें फेंकती हुई प्रतीत हो रही थीं। कपड़े सब काले थे, बाल फैले हुए थे, मुँहका रंग किञ्चित् श्यामल था और उसपर एक अनिर्वचनीय गम्भीरता व्याप्त थी। उसी मुद्रामें बिलकुल उस बिल्लीकी तरह, जिससे वह युवतीके रूपमें परिवर्तित हुई थी, वह अपने पतले होंठोंको चौड़ाकर दाँत निकाल रही थी और हल्की हल्की गुर्राहटका स्वर उसके मुँहसे निकल रहा था।

आँखें मूँदकर नाई पलङ्गपर ढह गया। "या अल्लाह ! या ख़ुदा !" उसके मुँहसे निकला, "क्या मैं ख़्वाब देख रहा हूँ ?"

सिद्धनाथका स्वर सुनाई पड़ा : "तारा, इधर आ।"

नाईने आँखें खोलकर देखा कि वह युवती विचित्र मदमाती चालसे सिद्धनाथकी ओर निगाहें जमाये आगे बढ़ी और सहसा ही दौड़कर उसके गलेसे चिपट गई। सिद्धनाथने उसे ज़ोर देकर अलग किया और बोला, "यह कैसी असभ्यता है ! अब तू बिल्ली नहीं है, साधारण स्त्री है।"

उससे अलग होकर, ठोडी नीचे झुकाकर युवतीने ऊँची पुतलियोंसे सिद्धनाथको घूरना आरम्भ किया। फिर उसकी निगाह अतिथिकी ओर गई और वह डरकर सिद्धनाथकी पीठके पीछे चली गई। उसके कन्धोंके पीछेसे उसने सिरको उचकाकर उसी तीव्र दृष्टिसे मेहमानको देखा। फिर दाँत निकालकर हौले-हौले गुर्राई।

सिद्धनाथने गरदन झुकाकर, हाथको सिरसे ऊपर उठाते हुए, अतिथिकी अभ्यर्थना की और बोला, "महाशय, यही वह छोटा-सा जादू है, जिसके लिए मेरे पूज्य पिताजीको अपनी जानसे हाथ धोना पड़ा। आपको यह

जानकर ताज्जुब होगा कि यह बिल्ली एक सौ सत्तावन बरसकी आयुकी है और प्रेतराज कालकुट्टमकी बेटी तथा किन्नर देशकी राजकुमारी है। सुदूर दक्षिणमें जब मैं गया था, तो मैंने इसे एक राजवाटिकामें विहार करते हुए देखा था और वहींसे बिल्ली बनाकर अपने साथ लेता आया था। मगर अफ़सोस कि यह जो भाषा बोलती है वह इधरके लोगोंकी समझमें नहीं आती। एक अरसे तक बिल्लीके रूपमें रहनेके कारण इसके भीतर बहुत-सी आदतें बिल्ली-जैसी हो गई हैं।"

ताराने इस बातके समर्थनमें फिर होंठ फैलाकर अपने दाँत दिखाये और अपने दोनों हाथोंके पंजे सिद्धनाथके कन्धोंपर रख दिये।

मानो नींदसे चौंकते हुए यवनदूत बोला, "ओह! तब तो यह हकीकत है, ख़्वाब नहीं है। या ख़ुदा, इस फ़ानी दुनियामें यह भी मुमकिन है! ओह! सब तेरी कुदरत है, तेरा कमाल है।" इसके बाद वह कुछ और चेतन हुआ और अपने मेज़बानसे बोला, "आप चाहें तो अपने मन्त्रबलसे फौज़की फौज़को जानवरोंकी शक्लमें बदल सकते हैं।"

"ओह! प्यारे दोस्त," सिद्धनाथने कहा, "मैं किस प्रकार बताऊँ कि यह काम कोई बहुत मुश्किल काम नहीं है। मगर अफ़सोस यह है कि हम लोग हिन्दू हैं और हमारे शास्त्रोंके अनुसार एक आदमी पर यह प्रयोग करनेसे प्रयोगकर्त्ताको एक हत्याका पाप लगता है।"

"वह किस तरह?" आश्चर्यसे ताराकी बिल्ली-जैसी चेष्टाको देखते हुए नाईने पूछा।

"इस तरह कि इस मन्त्रसे वशमें किये हुए व्यक्तिको आप चाहे जिस जानवरकी शकलमें बदल तो सकते हैं, मगर उस व्यक्तिका स्वतन्त्र विकास एकदम रुक जाता है। उसके बाद न उसकी आयु बढ़ती, न शरीर बढ़ता और न बुद्धिका ही विकास होता। सब प्रवृत्तियाँ जहाँ की तहाँ जड़ हो जाती हैं। उल्टे जिस जानवरकी शकलमें उसे बदला जाता है धीरे-धीरे

उसकी आदतें उसके भीतर समा जाती हैं और एक समय ऐसा आता है कि मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ उसके भीतरसे एकदम लोप हो जाती हैं। फिर इस मन्त्रका जो सिद्ध होता है वह भी किसी-न-किसी दिन मरता ही है।"

"उसके मर जानेसे क्या फ़रक पड़ता है?" मुँह बाकर अतिथिने पूछा।

"उसके मर जानेसे उन जानवरोंका फिर मनुष्य-रूपमें आना असम्भव हो जाता है," सिद्धनाथने एक-एक शब्द पर गम्भीरताके साथ ज़ोर देते हुए कहा। "इसका अर्थ है कि फिर उस या उन मनुष्योंकी हत्या हो जाती है, जिन्हें जानवरोंकी शकलमें बदला गया था।"

"ओह! ओह!" अपने कलेजे पर हाथ रखकर मेहमानने गलेमें कुछ गटका, मानों उसीको पशु-रूपमें परिवर्त्तित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा हो। "भला, यह तो बताओ," उसने पूछा, "कि क्या तुम पूरी फ़ौजको जानवर बना सकते हो?"

सिद्धनाथ हँसा। "आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, महाशय। आपने देखा ही है कि एक प्रयोगके लिए कितना आडम्बर रचना पड़ता है, कितनी देर मन्त्रपाठ करना पड़ता है। इस मन्त्र-प्रयोगमें कोई सामूहिक विधि नहीं है। हाँ, यह हो सकता है कि यदि बनारस पर हमला हुआ, और हमारी आत्माको इससे कष्ट पहुँचा, तो आपके प्रमुख सरदारों तथा सेनापति सालार मसूद पर यह प्रयोग किया जा सकता है—यहीं बैठे-बैठे..."

"या रब!" नाईने अपने सिरपर हाथ फेरा और यक़ीन करनेके लिए उसने फिर उस रूपान्तरित बिल्लीको घूरकर देखा। वह गुर्राई।

सिद्धनाथ फिर अपनी पीठिका पर विराजमान होता हुआ बोला, "आप ख़ुद समझ सकते हैं कि सुबहसे शाम तक सिर्फ़ मंत्र-पाठ ही करते रहा जाय, तो मैं समझता हूँ ज़्यादासे ज़्यादा ढाई सौ आदमियोंको जानवर बनाया जा सकता है। ग़ज़नीकी पूरी फ़ौजको जानवर बनानेमें इस हिसाबसे

मेरा ख़्याल है कि...कि...?" और उसने सहायताके लिए अपने सम्मानित अतिथिकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टिसे देखा।

नाईने तुरन्त सहायता की: "जनाब, इस हिसाबसे, ख़ुदा झूठ न बुलवाये—देखिए, चार, चार सौ, चवालीस सौ—समझिए कि साढ़े चार हज़ार दिन आपको मन्त्रपाठ ही करते रहना पड़ेगा। तब तक तो हम सारे हिन्दुस्तानमें इस्लाम फैला कर गज़नी भी वापस जा पहुँचेगे।"

सिद्धनाथकी आखें चमकीं। "आपने सही फ़रमाया," वह बोला। "इसका मतलब होता है लगभग बारह साल—बिलकुल असंभव है......" उसके होंठों पर एक अलक्ष्य मुसकराहट आई। "आप अब आराम कीजिए। अभी आपकी रास्तेकी थकान नहीं उतरी होगी। हम लोगोंको भी अनुमति दीजिए। मेरा विश्वास है कि आपको रात भर अच्छी नींद आयेगी।"

"ज़रूर, ज़रूर," नाईने तारा पर दृष्टि गड़ाकर उत्तर दिया। "अब आप लोग भी आराम करें। मुझे अब किसी चीज़की ज़रूरत नहीं है।"

सिद्धनाथने उठते हुए कहा, "मेरा विश्वासी अनुचर दरवाजे पर ही सोया रहेगा। आप जब चाहें उसे आवाज़ देकर बुला सकते हैं।"

"बहुत ख़ूब," नाईने आश्वस्त होकर कहा।

इसके बाद वह सिद्धनाथ और उसके कंधेसे लगी ताराको बाहर जाते देखने लगा। काले कपड़ोंमें आवेष्ठित उस लड़कीको देखकर उसे अब भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। मगर यथार्थ तो यथार्थ था। गदाधरने दोनों मशालें उतार लीं और एक छोटा-सा दीपक जलता हुआ छोड़कर वह भी कक्षसे बाहर निकल गया।

उस रात बेचारे गज़नवी नाईको नींद आई कि नहीं आई इसे कौन बता सकता है? वह सारी रात इसी आशंका पर विचार करता रहा कि इस तरह का जादू करनेमें एक आदमीको तो ज़रूर बारह साल लग

जायँगे, मगर यदि एक हज़ार आदमियोंको यह मन्त्र सिखा दिया जाय, तो फिर तो यह काम कुल साढ़े चार दिनका रह जाता है। उसने अन्तमें निश्चय किया कि वह सालार मसूदकी हजामत बनाते समय उसके कानोंमें जल्दी ही यह विचित्र सत्य उँडेल देगा। फिर उसकी मरज़ी कि वह ख़बरदार हो या न हो।

घरके एक दूर कोनेमें जाकर सिद्धनाथने तारासे फुसफुसा कर कहा, "बस, अब तुम्हें यहाँ रहनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें घर छोड़ता जाऊँगा। अब तुम्हें ज्ञात हो गया होगा कि किस प्रकारकी कलाका प्रदर्शन उचित है। हमारी सामाजिक चेतना और राष्ट्रकी उन्नतिमें जो अभिनय योग दे वही सच्चा अभिनय है—क्योंकि इस संसारमें हम सब अपना-अपना विशिष्ट अभिनय कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत कुरुचिपूर्ण अभिनयको स्थान नहीं है—उसके लिए अवसर ही नहीं है।"

ताराने ठोडीको नीचे करके, पुतलियोंको ऊपर उठाकर, सिद्धनाथको घूरा और दाँत निकालकर गुर्राई। यह देखकर सिद्धनाथ ठठाकर हँस पड़ा। फिर बोला, "अब और ज़्यादा गुर्राना नहीं—नहीं तो मेरे मन्त्रमें इतनी शक्ति भी है कि तुम्हें फिरसे बिल्ली बना दिया जाय।"

तारा अपना विकृत रूप त्यागकर मुसकरा उठी और सिद्धनाथके गलेसे लिपट गई। बहुत धीमे और अस्पष्ट शब्दोंमें वह उसकी आँखोंमें आँखें डालकर बोली, "मैं तो चाहती हूँ कि तुम सदा के लिए मुझे उस ताराके रूपमें बदल दो, जो सदा तुम्हारे संग, तुम्हारे हृदयसे चिपकी रहती है। न जाने कब तुम उस मन्त्रका प्रयोग करोगे!" और उसने एक दीर्घ निःश्वास उसके होंठों पर विसर्जित कर दिया।

कुछ क्षणोंके उपरान्त सिद्धनाथने कहा, "चलो, अब चलें। सुबह तक बहुत प्रबन्ध करना है—नहीं तो सब किया-धरा चौपट हो जायगा।"

गदाधरको आवश्यक निर्देश देकर तारा और सिद्धनाथ उसी समय उस घरसे निकलकर गलीमें आ गये।

पण्डित गणेशदत्त अभी तक जाग रहे थे। जब उन्होंने दरवाज़े पर दस्तक सुनकर द्वार खोलनेके लिए हनुमानको भेजा, तो वह अपने पीछे सिद्धनाथ और ताराको लिये उछलता-कूदता आया। "गुरुजी, गुरुजी, हमारी भगिनी तारा आ गई है!"

ताराने झल्ला कर कहा, "तुम्हारी भगिनी कहीं भाग नहीं गई थी, जो इस तरह चिल्ला रहे हो।"

हनुमानने एकदम चुप होकर अपनी भगिनी की ओर देखा और कुछ समझ कर गरदन हिलाई, जिसका साथ उसकी चुटियाने भी दिया।

पण्डित गणेशदत्त दोनोंके अभिवादनके उत्तरमें उनके सिर पर हाथ रखकर बोले, "इतनी जल्दी! काम हो गया?"

"बहुत अच्छी तरह," सिद्धनाथने कहा। "अब मुझे राजभवन जाना है। एक भी क्षण हमारे पास व्यर्थ खोनेके लिए नहीं है। पूरा हाल आप तारासे सुन लीजिए। मैं चला।"

पण्डित गणेशदत्तने फिर आशीर्वाद दिया, और तारा ठोडी नीचे किये उसे बिल्लीकी तरह घूर घूरकर मुसकराती रही। उसकी ओर देखकर सिद्ध-नाथ भी मुसकराता हुआ उनके घरसे निकल कर बाहर आ गया।

आधी रातका समय बीत गया था। हवा साँय-साँय चल रही थी और नदीका किनारा होनेके कारण उसके भीतर शीत था, जो बदनको कँपा देनेवाला था। एक गरम कक्षमें महामात्य रामेश्वर शुक्ल अभी तक सिद्धनाथकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसा ही निश्चय भी हुआ था।

जब उन्हें उसके आनेका समाचार मिला, तो वह उत्सुकतावश बाहर दौड़े गये। सिद्धनाथका हाथ पकड़ कर कमरेमें लाते हुए वह बोले, "कुछ पता चला? आदमी तो वह बहुत ज़बर्दस्त और काइयाँ मालूम होता है।

उसके मुँहसे किसी सूचनाका निकल जाना ज्वालामुखीसे जल निकलनेके समान है।"

कक्षमें आकर सिद्धनाथने अपनी अपूर्व गम्भीरतासे कहा, "महामात्य जी, ग़ज़नी की सेना न बीस लाख है, न तीस लाख, न पचास लाख—वह कुल ग्यारह लाखके आसपास है।"

"कैसे जाना?" रामेश्वर शुक्लने आश्चर्यसे सिद्धनाथको देखते हुए पूछा।

"मैंने अपनी बिल्लीको अपने 'मंत्रबल' से नारीके रूपमें बदल दिया। यवनोंके नाईने घबराकर हिसाब लगाया कि अगर मैं प्रति दिन उसकी सेनाके ढाई सौ आदमियोंको पशुओंमें परिवर्तित करता रहूँ, तो मुझे बारह साल लग जायँगे......!"

महामात्य उसकी बात पूरी होनेसे पहले ही हँस-हँस कर दोहरे हो गये। फिर बोले, "अब?"

"घोड़े तैयार हो गये?" सिद्धनाथने पूछा।

"काठियाँ तैयार हो रही हैं," शुक्ल जी बोले। "घोड़े पशुशालासे चुन लिये गये हैं।"

"काठियोंका प्रमार्जन (पालिश)?"

"यथाविधि तैयार किया गया है। ज़रा भी चूक नहीं है। एक श्वान पर प्रमार्जित वस्त्र रख कर, अग्निके निकट ले जाकर उसका स्वेद निकलनेका अवसर दिया गया। प्रयोग पूरा उतरा। एक क्षणकी भी देर नहीं लगी।"

"ठीक है", सिद्धनाथने सन्तोषसे कहा। "अब रातोंरात एक नेहरना और तैयार करवाइए।"

"नेहरना!" शुक्ल जी आश्चर्यसे बोले। "नाखून काटनेका?"

"हाँ," सिद्धनाथने कहा, "मुझे अपने मित्रको उपहारमें देना है।

उस ग़रीबके लिए इससे सुन्दर उपहार और कोई हो सकता है यह मेरी समझमें नहीं आया। निश्चय ही वह सालार मसूदका ख़ास नाई है। उसकी प्रतिष्ठाके अनुकूल ही उपहार होना चाहिए, शुक्ल जी—और मैं समझता हूँ कि काशी राज्यके महामात्य होनेके नाते आप पर्याप्त बुद्धिके स्वामी हैं।"

रामेश्वर शुक्ल मुसकरा कर बोले, "ज्योतिषप्रवर, किसीने सच ही कहा है कि मनुष्यका बल उसके शरीरमें नहीं, उसकी बुद्धिमें है। तभी तो उसने हाथी जैसे आकारप्रकारके जीवको अपना दास बना लिया है। मेरा ख़्याल है कि यवनोंका दूत, वह नाई इन मूल्यवान वस्तुओंको लेकर बहुत प्रसन्न होकर यहाँसे प्रस्थान करेगा। अब महाराज गांगेयदेव, नरहरि चौधरी तथा बप्पा चौधरीके पास दूतोंको भेज दिया जाय? उन्हें और रोक रखना उचित नहीं है।"

सिद्धनाथने कुछ सोचकर कहा, "महामात्य जी, मेरा विचार है कि इसी समय आपको चारों दिशाओंमें दूत पठाने होंगे। केवल तीन स्थानोंपर समाचार भेजनेसे काम नहीं चलेगा। त्रिपुरीमें सम्भवतः सालार मसूदने अपना दूत नहीं भेजा होगा। वह केन्द्रको बचाकर प्रान्तों और भुक्तियोंपर आक्रमण करेगा। काशी सभी हिन्दुओंका तीर्थ है। जिसे पता लगेगा वह काशीके रक्षाके लिए बरछी, भाला, तलवार, लाठी, जो मिलेगा ले कर खड़ा हो जायगा। महामात्यजी, भुक्तियोंके विभिन्न नरेशोंके नाम काशीराजकी ओरसे सन्देश जाना चाहिए। आज रातको आपके लिए सोना पाप है।"

"पहले किनके पास समाचार भेजा जाना चाहिए?"

"कड़ा और माणिकपुरके रईसोंको भेजिए। राय साहब, राय अर्जुन, राय भिक्खन, राय कनक, राय कल्याण...सबको कल संध्या तक काशी पर आने वाली विपत्तिकी सूचना मिल जानी चाहिए। यदि हमें समाचार पहुँचाने

और उन्हें तैयारी करनेका समय मिल गया, तो यवनोंकी ग्यारह लाख सेनाका सामना करनेके लिए तीस लाख जवान उठ खड़े होंगे...और यदि ...यदि काशीको नष्ट ही होना है, तो एक भी यवनको हम जीवित नहीं लौटने देंगे।"

"ऐसा ही हो," महामात्यने नेत्रोंको संकुचित करते हुए भविष्यमें झाँकनेकी चेष्टा की। वह निश्चयात्मक स्वरमें बोले, "ऐसा ही होगा।"

"किन्तु ऐसा होनेसे पहले मैं स्वयं अपनी आँखोंसे देखना चाहता हूँ कि वह अठारह बरसका छोकरा, जिसने गाज़ीकी पगड़ी अपने सिर बाँध रखी है, कितना साहस अपने मनमें रखता है—कैसा है उसका दिल, जो गज़नीसे दिल्ली तक पत्थरोंको रौंदता, नदियोंको पार करता और पहाड़ोंको लाँघता, यहाँ तक आनेपर भी अभी तक सुरक्षित रूपसे धड़क रहा है! महामात्य जी, उसके दूतके सन्देशका उत्तर लेकर मैं स्वयं यवनोंकी छावनीमें जाऊँगा।"

"तुम!" आश्चर्यसे महामात्यका बोल नहीं निकला। वह चकित होकर बोले, "तुम यवनोंके मध्यमें अकेले जाओगे? सम्भव है तुम्हें पता न हो कि राजदूतोंके संबन्धमें उन लोगोंमें वैसा राजधर्म नहीं बरता जाता, जो हम लोग बरतते हैं।"

सिद्धनाथ उपेक्षासे हँसा। "मालूम है," उसने कहा। "इस समय महाराज कहाँ हैं?"

"महाराज मंत्रणाकक्षमें ही सो गये हैं। कहु मिश्रको उन्होंने पाँच सहस्र नन्दी दानरूपमें भेजे थे। वे उस त्यागी ब्राह्मणने लौटा दिये हैं। इससे वह बहुत पीड़ित हैं। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि उन्होंने किसी ब्राह्मणको दान दिया हो और उसने अस्वीकार कर दिया हो। उन्हें इसमें भारी अमङ्गल दिखाई देता है। सम्भवतः वह कल ही उटाटरियाके आस-पासकी विस्तीर्ण भूमिका दानपत्र लेकर स्वयं उनकी सेवामें अर्पित करने

जायँगे। उन्होंने वह दानपत्र तैयार करनेकी आज्ञा मुझे दी है। जब तक कद्दू मिश्र दान स्वीकार नहीं कर लेंगे, तब तक उन्हें चैन नहीं।"

"तब मैं उन्हें नहीं छेड़ूँगा," सिद्धनाथने कहा। "सम्भव हो, तो उन्हें सुझाइए कि दम्भको दम्भसे टकराने से अमङ्गल होता है। ब्राह्मण दान ग्रहण न करे, तो समझना चाहिए कि उसे दम्भ है। दाता देनेका आग्रह करे, तो उसे दम्भ है। दम्भ और पाहनकी प्रकृति एक सी होती है। दोनोंके टकरानेसे अग्नि उत्पन्न होती है। जितने बड़े ये पत्थर होते हैं उतनी ही बड़ी वह अग्नि होती है।"

"कहूँगा," महमात्यने कहा। "अवश्य उन्हें रोकने का प्रयत्न करूँगा।"

"तब सुबह तकके लिए विदा," सिद्धनाथने कहा।

काशीके राजकीय कारख़ानोंमें रातभर काम चलता रहा—चमड़ेका काम, लोहेका काम, सोनेका काम, हीरे-पन्नोंका काम और प्रमार्जनका काम—सुबह तक सोने और हीरेकी कनियोंके फूलोंसे सुसज्जित ग्यारह काठियाँ तैयार हो गईं, जिनपर किये हुए प्रमार्जनके भीतर कोई भी रूप-गर्विता अपना मुख देखकर लजा सकती थी। इस सामानको साथ लेकर जो सैनिक दल जाने वाला था वह सज गया।

जब सिद्धनाथका अतिथि उसके घरसे बिदा होने लगा, तो सिद्धनाथने कहा, "आपने मेरा आतिथ्य स्वीकार किया, इसके लिए किस प्रकार धन्यवाद दूँ, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। कृपा करके मेरा यह उपहार स्वीकार कीजिए।" और उसने अपना हाथ आगे बढ़ाकर खोल दिया।

एक रत्नजटित, सुन्दर, चमकदार नेहरना उसके हाथपर नाईने देखा। प्रसन्नतासे उसने उसे उठा लिया और बोला, "आपकी प्रतिभा विचित्र है! मैं बड़ी मुहब्बतसे इसे मंजूर करता हूँ। इसकी धारका इस्तेमाल सबसे पहले ग़ाज़ी हुज़ूरके नाख़ूनों पर होगा।"

सिद्धनाथकी आँखें चमकीं। उसके होंठों पर मुसकराहट आई।

: दुपट्टेमें जागीर :

राजा बनारका उत्तर लेकर यवन राजदूतके साथ जाते समय सिद्धनाथने अपने विश्वस्त अनुचर गदाधरसे जब यह कहा कि वह जहाँ जा रहा है वहाँसे उसका लौटना सन्दिग्ध है, और वह यदि न लौटा, तो उसके घर-बारकी सारी सम्पत्तिका वह स्वामी होगा ऐसी व्यवस्था वह कर चला है, तो अपनी पहलवानीका ज़ोम रखनेवाला वह व्यक्ति रो पड़ा। जब तक उसने अपने दुपट्टेके छोरसे आँसू नहीं पोंछ लिये, तब तक सिद्धनाथ उसके कन्धेपर हाथ रखे रहा।

यवन राजदूतके साथ आये सैनिकों तथा सिद्धनाथके साथ जाने वाले ग्यारह अश्व जब तक आँखोंसे ओझल नहीं हो गये, तब तक महामात्य रामेश्वर शुक्ल और गदाधर उन्हें देखते रहे। काठियोंकी पालिश बिगड़ न जाये इस विचारसे सिद्धनाथने उनपर चौहरी चादरें बिछानेकी सावधानी बरती थी। किन्तु उसके दूसरे उद्देश्यकी बात विचार कर महामात्य होंठों-ही-होंठोंमें मुसकराते रहे। गदाधरने उनसे अनुमति लेकर मरे क़दमोंसे घरकी राह ली। सारे रास्ते वह धर्माध्यक्षकी कन्या ताराकी बात सोचता रहा। क्या उसके स्वामीके मनमें उसके प्रति कोई स्नेह है? कई बार उसे सन्देह हुआ था कि है, किन्तु अब उसे मालूम होता था कि नहीं है। यदि होता, तो शेरोंकी माँदमें जाते समय क्या वह उससे भेंट करके भी न जाते? किसी अशुभ घटनाके घट जानेपर क्या वह अपनी सम्पत्तिका कुछ भी अंश ताराको अर्पित होनेकी व्यवस्था न कर जाते? मन ही मन उसने निश्चय किया कि यदि कोई अवसर ऐसा आया, जिसमें वह अपनी स्वामि-

भक्तिका परिचय दे सके, तो अपने प्राणोंका उत्सर्ग करके भी वह अपनेको धन्य समझेगा।

यह आवश्यक कार्य समाप्त हो जानेपर महामात्य रामेश्वर शुक्लने उटाटरियाके लिए महाराज बनारके प्रस्थानका प्रबन्ध करना आरम्भ किया। इस सम्बन्धमें सिद्धनाथकी जो बात उन्होंने महाराजके सम्मुख रखी थी उससे वह सहमत थे, किन्तु पश्चात्तापकी आग उनके हृदयको बुरी तरह झुलसा रही थी। उन्होंने दानपत्र तैयार कराया, धर्माध्यक्षजीको साथ लिया और बीस अंगरक्षकोंके साथ उटाटरियाको प्रस्थान कर दिया। जगन्नाथ और भोलानाथ धर्माध्यक्षके साथ चिपके रहे।

पुत्रोंके काशी चले जानेके बाद कद्दू मिश्र पूर्णतः शिवमय हो गये थे। राजा बनारके द्वारा दो बार भेजे दानके जो उपसर्ग आये थे उनके अतिरिक्त उनकी भक्ति अर्चनामें किसी प्रकारका व्याघात उपस्थित नहीं हुआ था। आज भी वह सुबह स्नानध्यानसे निबट कर एक बार जो भजन गाने बैठे, तो बस बैठे ही रह गए।

उनकी अनुगत कन्या पार्वती शिवपूजनके लिए बेलपत्र, नैवेद्य आदिका प्रबन्ध करके बाहरसे आ रही थी। उसने राजकीय सार्थको दूरसे आते देखा। कुछ देर तक वह खड़ी हो कर देखती रही। फिर उसने रथमें बैठे जगन्नाथ और भोलानाथको भी देखा। उसका सारा अंगप्रत्यंग प्रसन्नतासे नाच उठा। वह जल्दीसे भीतर दौड़ी। शिवालयके द्वारसे ही उसने चिल्लाना आरम्भ किया :

"जग्गू भैया और भोला भैया आ गये हैं, बाबा! देखो तो, वे लौट आये हैं। साथमें काशीके वही पण्डितजी हैं, जो उस दिन आये थे, और बहुत सारे लोग हैं...देखो तो, बाबा!"

भजन रोक कर कद्दू मिश्रने कहा, "इतना चिल्लाना ठीक नहीं है, पार्वती। आवागमन संसारमें लगा ही रहता है। केवल दर्शक बने रहना

ही हमारा धर्म है...” और इतना कह कर वह फिर अपने भजनमें लग गये।

उनके पास सब सामग्री रख कर पार्वती उल्लासके साथ फिर बाहर दौड़ी। आगतोंके वाहन कद्दू मिश्रके घरके सामने रुक गये। जगन्नाथने सहारा देकर महाराज बनारको रथसे उतारा। तब तक दैनिक कामकाजमें लगे गाँवके लोगोंमें हलचल मच गई। अनेक ग्रामीणोंने मार्गमें ही भूमिपर लेट कर महाराज बनारकी अभ्यर्थना की। उन सबको यथाविधि उत्तर देते हुए महाराज बनारको जगन्नाथ तथा धर्माध्यक्ष भीतरकी ओर ले चले, जब कि भोलानाथ उनसे भी पहले दौड़ कर कोठेमें पहुँचा और पार्वतीकी सहायतासे उसने जैसा भी बन पड़ा उन सम्मानित अतिथियोंके बैठनेका प्रबन्ध किया। फिर उसने पार्वतीसे पूछा, “पिता जी कहाँ हैं?”

“भगवान् विश्वनाथकी सेवामें...”

“क्या यह सेवा कभी इस जन्ममें समाप्त नहीं होगी?” भोलानाथने अलक्ष्य पिताके निमित्त व्यंजना की। “उन्हें अब तक मालूम नहीं हुआ कि घरमें इस देशका राजा आया है?”

पार्वतीको उसकी यह बात बुरी लगी। वह बोली, “जो मालूम होना है वह सब मालूम हो जायगा, पर बिना शिवपूजनके पूर्ण हुए वह नहीं उठेंगे। व्यर्थमें ही विषाद न फैलाओ, भैया।”

भोलानाथ उसका कुछ उत्तर देता, लेकिन तभी राजा, धर्माध्यक्ष तथा जगन्नाथ कक्षमें प्रवेश करते दिखाई दिये। जगन्नाथको योग देते हुए, भोलानाथ भी हाथोंसे संकेत करते-करते उन लोगोंको बिछे हुए आसनों तक ले आया। उनके बैठ जाने पर वह हाथ जोड़कर बोला, “पिता जी संभवतः घरमें नहीं हैं, अन्नदाता। जब तक वह आयँ तब तक मैं आपके लिए थोड़ेसे कंदमूल-फल का प्रबन्ध करता हूँ......”

“इसकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, आयुष्मान्,” राजा बनारने

हाथ उठाकर उसे रोकते हुए कहा, "हमने आज निर्जल व्रत रखा है। कार्यसिद्धि होने पर ही प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

भोलानाथ उद्विग्नतासे हाथ मलने लगा। जगन्नाथने निवेदन किया, "फिर भी हाथ-पैर तो धोएँगे ही, महाराज। रास्तेमें इतनी थकान और गरमी......"

राजा बनारने हँसकर कहा, "मार्गमें बैलोंको ही हमारा भार वहन करना पड़ा है, हमें बैलोंका नहीं।"

इस सरल परिहास पर सभी लोग खिलखिला कर हँस पड़े। तभी जगन्नाथ राजासे अनुमति लेकर पार्वती सहित पिताको देखनेके लिए बाहर चला गया। जब वह शिवालयमें पहुँचा, तो कट्टू मिश्रने पूजन आरम्भ कर दिया था। उनकी पीठके पीछे पहुँचकर जगन्नाथ बोला, "महाराज बनारने स्वयं पधार कर इस घरको पवित्र किया है, पिता जी। कृपा करके अतिथिकी अभ्यर्थना करनेके लिए शीघ्रता कीजिए......"

जगन्नाथ अपनी बात कहता रहा, मगर कट्टू मिश्रके कार्यकलापमें तनिक भी अन्तर न पड़ा। लगभग एक घड़ी बाद उन्होंने पूजन समाप्त किया। हाथ जोड़कर प्रतिमाके सम्मुख मस्तक नवाया और शान्तिके साथ उठ खड़े हुए। जगन्नाथने इसे ही ग़नीमत समझ कर कहा, "पिता जी, जल्दी चलिए, ऐसा न हो कि महाराज बनार बुरा मान जायँ......"

कट्टू मिश्रने अपने शान्तिपूर्ण नेत्र जगन्नाथकी ओर उठाकर कहा, "महाराज बनार देने आये हैं, पुत्र, लेने नहीं आये हैं। उन्हें उतने उद्विग्न होनेकी आवश्यकता नहीं है, जितना तू हो रहा है।"

यह प्रतारणा सुनकर जगन्नाथ चुप हो गया। पार्वतीने विश्वनाथको नमस्कार किया और बाबाके पीछे-पीछे वह भी शिवालयसे बाहर आ गई। बहुत सावधानीसे उसने मन्दिरके द्वार बन्द कर दिये।

कट्टू मिश्रको दूरसे ही आते देखकर राजा बनार उठ खड़े हुए और

आगे बढ़कर उन्होंने उस त्यागी ब्राह्मणके पैर छुए। उनके सिर पर हाथ रखकर कट्टू मिश्रने आशीर्वाद दिया, "भगवान् रुद्र काशीका मङ्गल करें। जिनके डमरूकी ध्वनिसे महर्षि पाणिनिने व्याकरणके स्वरोंकी रचना की, उनकी भक्तिसे आपके हृदयके भीतर ज्ञानका आलोक उत्पन्न हो।"

धर्माध्यक्षने भी यथाविधि कट्टू मिश्रको अभिवादन किया। उनकी मङ्गल-कामना घोषित करते हुए कट्टू मिश्र उस कोठेकी ओर चले, जो उस घरमें बैठनेका एक मात्र स्थान था। भोलानाथने उनके लिए भी एक तनिक नीचे आसनका प्रबन्ध कर रखा था। उसे यह देखकर मन ही मन बहुत खेद हुआ कि आसन ग्रहण करते समय उसके पिताको राजा बनारकी उच्च पदवीका ध्यान नहीं रहा।

"कहो, राजन्, राज्यमें कुशलमङ्गल तो है?" बैठते ही कट्टू मिश्रने राजा बनारको लक्ष्य करके पूछा। "पण्डित जीके हाथों मैंने एक सन्देश आपको भेजा था। वह मिला था न?"

"वह मिला था," राजाने नतमस्तक होकर कहा, "किन्तु मेरे प्रमादके कारण उस समय उस पर उपयुक्त ध्यान नहीं दिया गया, जिससे काशीका भारी अहित होनेकी संभावना उत्पन्न हो गई है। अपने उस पापका प्राय-श्चित्त करनेके उद्देश्यसे ही मैंने उटाटरियाके भगवान् विश्वनाथके दर्शन करनेकी कामना की थी—जो आज पूरी होगी।"

"अवश्य होगी," कट्टू मिश्रने कहा। "इसके अतिरिक्त और कोई प्रयोजन तो नहीं था न?"

"एक उपालम्भ भी मन में है, मिश्र जी। दो बार शिवार्पित किया हुआ मेरा द्रव्य आपने लौटा दिया है। इससे मेरा मन बहुत अशान्त है। इसीमें मुझे काशीका अमङ्गल दिखाई देता है।"

कट्टू मिश्रने कोमल वाणीमें कहा, "आप सम्भवतः इस बातको भूल गये, राजन्, कि हम भूमिहार ब्राह्मण हैं। हम लोगोंमें दान-दक्षिणा ग्रहण

नहीं की जाती। क्षत्रियोचित कार्योंसे ही हमारी जातिमें जीविका-अर्जन होता है। भगवान् रुद्र जब हम लोगोंके पञ्जोंमें फँस जाते हैं, तो उन्हें भी दान-दक्षिणासे अरुचि हो जाती है...''

त्यागी ब्राह्मणके इस सरल परिहासपर उनके दोनों पुत्रोंके अतिरिक्त सभी लोग मुसकरा दिये। राजाने कहा, "किन्तु क्षत्रिय जब ब्राह्मणोचित कार्य करने लगता है, तब वह ब्राह्मण हो जाता है। आप तो ब्राह्मण ही हैं, ब्रह्मशिरोमणि हैं। दान ग्रहण करना ब्राह्मणका धर्म है, मिश्रजी। शिवार्पित द्रव्य यदि आप ग्रहण न करें, तो आपके जालमें फँसे भोले बाबाको कष्ट नहीं होगा?"

धर्माध्यक्षने इसका समर्थन करते हुए कहा, "फिर मिश्रजी तो किसी भी क्षत्रियोचित वृत्तिसे जीविका अर्जन नहीं करते, महाराज।"

"आप सही कहते हैं, धर्माध्यक्षजी," कद्दू मिश्रने कहा। "दान नहीं लेते यह कह कर भी हम गाँवके लोगोंसे शरीर चलानेके लिए बिना पका अन्न लेते हैं। किन्तु जिस प्रकार औषध-मात्रामें आसव ग्रहण करने मात्रसे कोई पेटका रोगी शराबी नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार भवपीड़ासे पीड़ित कोई त्यागी ब्राह्मण दानजीवी नहीं माना जा सकता। जीवनके लिए दैनिक सीधा ग्रहण करना दान लेना नहीं है, इससे अधिक ग्रहण करना परिग्रह है। परिग्रह सब पापोंका मूल है। भगवान् रुद्रने सभी परिग्रहोंका त्याग कर रखा है। केवल अत्यन्त आवश्यक वस्तुओंके अतिरिक्त उन्होंने अपने पास कुछ नहीं छोड़ा है। जब तक उनका तीसरा नेत्र मुँदा रहता है, तभी तक लोग अज्ञानतावश जमाजोखों बटोरते रहते हैं। एक दिन वही नेत्र खुलता है और भगवान् रुद्र वह सारा परिग्रह नष्ट कर देते हैं।"

यह उपदेश जगन्नाथ और भोलानाथने भी बहुत मनोयोगपूर्वक सुना और उन दोनोंके मुँह उतर गये। बहुत परिश्रमसे उन्होंने अपने बोलनेपर संयम कर रखा था। प्रति पल वह संयम तिरोहित होता जा रहा था।

राजा बनारसने कहा, "मिश्रजी, दान त्यागीको ही दिया जाता है, परिग्रहीको कोई नहीं देता। आपने यदि मेरा यह दान भी स्वीकार नहीं किया, तो मुझे बहुत दुःख होगा," और यह कहते हुए उन्होंने धर्माध्यक्षजीसे वह दानपत्र ले लिया, जो वह अपने साथ लाये थे। उसे मिश्रजीकी ओर बढ़ाते हुए वह बोले, "इसमें मैंने कोई द्रव्य दान नहीं किया है। केवल कुछ भूमि है, जिसे जोत-बो कर..."

"भगवान् पशुपतिनाथ रमते जोगी हैं," कट्ठ मिश्रने उनकी बातको आगे न सुननेकी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा। "मेरे लिए किसी प्रकारका परिग्रह सर्पके दंशके समान है। इसलिए, राजन्, अब इसकी चर्चा न कीजिए।"

हताश होकर राजा बनारसने धर्माध्यक्षकी ओर देखा। वह कट्ठ मिश्रकी प्रकृतिको अच्छी तरह पहचान गये थे। इसलिए गरदन हिला कर इस बारेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। जगन्नाथ और भोलानाथने इतनेपर भी किसी प्रकारकी टीका-टिप्पणी नहीं की यह संयमकी पराकाष्ठा थी। सम्भवतः वे समझ चुके थे कि इन तिलोंमें तेल नहीं है।

महाराज बनारसने कुछ क्षणों तक मन ही मन विचार किया। फिर वह बोले, "मिश्रजी, मैं भगवान् विश्वनाथके दर्शन करूँगा।"

आगे लटके हुए अपने दुपट्टेके छोरको पीठ-पीछे करते हुए कट्ठ मिश्र उठ खड़े हुए और संक्षिप्त वाणीमें बोले, "आइए, भगवान् विश्वनाथके दर्शन प्रत्येक प्राणीको सुलभ हैं।"

पार्वती अब तक द्वारपर खड़ी थी। वह मन्दिरके द्वार खोलनेके लिए लपकी। धर्माध्यक्षजो अर्चनाकी सामग्री लेनेके लिए बाहर खुले हुए रथकी ओर जाने लगे, तो महाराज बनारसने कहा, "धर्माध्यक्षजी, हम दर्शन प्राप्त करके तुरन्त प्रस्थान करेंगे। वाहन तैयार रहें यह निर्देश दे आइये।"

कुछ ही देरमें साथ लाई अर्चनाकी सामग्री लेकर धर्माध्यक्षजी मन्दिरमें पहुँच गये। पार्वतीने जल लाकर रखा। तब तक महाराज बनारने पण्डित गणेशदत्तके कानोंमें कुछ धीरेसे कहा, जिसे सुनकर वह अचकचा कर उनका मुँह देखने लगे। फिर स्थिर होकर उन्होंने भी उस बात पर विचार किया। राजासे भूमिका वह दानपत्र उन्होंने वापस ले लिया।

पूजा आरम्भ हुई। राजा बनार कट्ठू मिश्र की बराबरमें बैठे और उन्होंने श्लोकोंका उच्चारण आरम्भ किया। राजा बनार संकेतानुसार सामग्री अर्पित करते रहे। पूजा यथाविधि सम्पन्न हुई।

सब लोग मन्दिरसे बाहर हुए। राजाने कट्ठू मिश्रसे चलनेकी आज्ञा चाही। द्वार पर लगभग सारा गाँव एकत्र हो गया था। उन लोगोंके हाथोंमें तरह-तरहकी भेंटकी वस्तुएँ थीं। कट्ठू मिश्रने प्रसन्न मुद्रामें कहा, "राजन्, ये लोग आपको दान देना चाहते हैं। आपका राजकोश भी इसी सामग्रीसे निर्मित होता है। किसी एक व्यक्ति पर श्रद्धा भाव रखकर उस कोशको लुटा देनेका अधिकार आपको नहीं है। प्रजा आपसे आशा करती है कि उस कोशका सार्वजनिक उपयोग किया जायगा।"

राजा बनारने कोई उत्तर नहीं दिया। भेंटकी वस्तुओंको उन्होंने हाथसे छूकर लौटा ले जानेके लिए कहा। जगन्नाथ और भोलानाथ उदास मनसे उनके सार्थके साथ कुछ दूर तक चले, फिर वापस लौट आये। किन्तु दोनोंके मस्तिष्क भुने जा रहे थे।

मिश्रजी अभी तक द्वारपर खड़े थे। शायद कुछ सोच रहे थे। पुत्रोंको आते देखकर वह मुड़कर घरके भीतर लौट चले। उसी समय उनकी पीठके पीछे उँगलीसे संकेत करके भोलानाथने जगन्नाथको कुछ दिखाया। "यह क्या है?"

जगन्नाथने भी आश्चर्यसे देखा कि उसके त्यागी पिताके दुपट्टेके उस छोरमें, जो पीठ पर लटका रहता है, कुछ बँधा हुआ है। क्या हो सकता

है ? उसने कहा, "सम्भवतः किसीने भिक्षामें कुछ दे दिया होगा। उसे ही दुपट्टेके छोरमें बाँधे फिरते हैं।"

"भिक्षा माँगने तो यह किसीके घर जाते नहीं। घरमें कोई दे गया होगा, तो उसे दुपट्टेके छोरमें बाँधनेकी क्या आवश्यकता थी ? ज़रा आगे बढ़कर पूछो तो सही, भैया।"

दोनों लपककर कोठेमें पहुँचे, जहाँ कट्ठू मिश्र उसी प्रकार क्लान्तमन बैठे थे, जैसे विपत्तिके टल जाने पर, कोई साहसी व्यक्ति सफल हो जाने पर थककर बैठ जाता है। अपने पुत्रोंको देखकर उन्होंने मन ही मन उनके प्रति कृतज्ञताका अनुभव किया। वे आसानी से विपत्तिको टलने देंगे ऐसी आशा उन्हें नहीं थी। वह किञ्चित् स्नेहका अनुभव करके बोले, "पुत्रों, मैं तुम दोनोंका ऋणी रहूँगा। तुमने असाधारण धैर्यका परिचय दिया।"

इस सरल अभिव्यक्तिमें किसी प्रकारका व्यंग्यात्मक भाव नहीं था। किन्तु जगन्नाथ इतनेसे ही क्रोधित हो गया। वह बोला, "अब हम लोगोंका अधिक ऋणी रहनेकी आवश्यकता नहीं है। घर घर भीख माँगकर पल्लेमें बाँध रखनेवालेको हम ऋणी बनाकर लाभ ही क्या उठा सकते हैं ?"

"यह तो तू फिर कुवचनोंपर उतर आया!" कट्ठू मिश्रने कहा, "मैंने भीख माँगकर ही क्या तुम लोगोंका पालनपोषण अब तक किया है ? तेरे मुँहमें जिह्वा है कि सर्प है ?"

भड़ककर जगन्नाथ बोला, "भीख नहीं माँगते, तो यह दुपट्टेके छोरमें क्या बाँध रखा है ?"

कट्ठू मिश्रने एकदम चौंककर अपने दुपट्टेका छोर देखा। दबाया तो सख्त सी धातुका अनुभव हुआ। तुरन्त पल्ला खोल डाला। उसके भीतरसे जो वस्तु निकली उसे तीनों ही व्यक्तियोंने भिन्न-भिन्न भावोंसे एकटक होकर देखा। यह हथेली भर लम्बा-चौड़ा, ताँबेका वही दानपत्र था, जिसमें राजा बनारने कट्ठू मिश्रको भूमिदान किया था।

"अरे, यह तो वही दानपत्र है!" कट्ठ् मिश्रके मुँहसे सहसा निकला।

जगन्नाथ और भोलानाथ दोनोंके मुखके भाव एकदम बदल गये। वे प्रसन्नतासे फूल गये। भोलानाथने कहा, "लीजिए, पिता जी, आपने त्यागमें सीमा पार कर दी, तो उन्होंने दानमें राजा कर्णको मात कर दिया। अब जो हो गया, सो हो गया। इतनेसे ही किसी दिन बढ़ते-बढ़ते बनारसकी राजगद्दी मिल जायगी।"

कट्ठ् मिश्रने मज़बूतीसे ताँबेके उस टुकड़ेको पकड़ लिया। अस्पष्ट शब्दोंमें वह बोले, "यह तो अन्याय है, धृष्टता है। राजा बनारको दानी होनेका इतना बड़ा दम्भ!"

जगन्नाथने भी विनम्र वाणीमें कहा, "पिता जी, हर वस्तुको देखनेके भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होते है। किसीके गुणोंको अवगुणोंके रूपमें देखना पण्डितोंका काम नहीं। राजा बनार प्रजापालक हैं। राज्यके सभी ब्राह्मणों पर उनकी समान कृपा है। भला, आप ही क्यों बहती गंगामें हाथ न धोएँ?"

"पुत्रों," मिश्रने कहा, "तुम लोगोंकी बुद्धि धर्ममें किञ्चित् मात्र नहीं है। तुम लोग उसके सूक्ष्म तत्त्वोंका अर्थ नहीं समझते। केवल रटंत विद्याके आधार पर तुम लोग पण्डित बन बैठे हो। दूसरोंके देखते मुँह फेर कर बैठे रहना और एकान्त पा कर माल बगलमें दबा लेना त्याग नहीं है, बगुला-भक्ति है। राजा बनारने आग्रहपूर्वक दान दिया इसके लिए वह प्रशंसाके पात्र हैं। किन्तु उनका यह दानपत्र उन्हें लौटाना ही होगा। नहीं तो सत्यकी रक्षा सम्भव नहीं होगी।"

जगन्नाथकी क्षणिक विनम्रता इससे फिर तिरोहित हो गई। चिल्ला-कर वह बोला, "तो फिर तुम क्यों पिता बने बैठे हो? हम दोनों भाइयोंका गला घोट दो और अपने सत्यकी रक्षा करो। बादमें हम लोग कमसे कम भीख माँगनेसे तो बच जायँगे।"

यह तीव्र वादविवाद सुनकर रसोई-घरमें भोजनकी तैयारीमें व्यस्त पार्वती निकलकर बाहर आ गई। कोठेकी तरफ आते हुए ही उसने देखा कि जगन्नाथ तीव्र स्वरमें हाथ हिला-हिलाकर पिताकी भर्त्सना कर रहा है। उसका कलेजा काँप गया।

कट्ठू मिश्रने कहा, "यदि मानवका गला घोटनेका अधिकार मानवको होता, तब भी मैं तुम लोगोंका गला न घोट पाता, क्योंकि ब्रह्माने न जाने किस कारण मुझे तुम जैसे अनाज्ञाकारी और उद्दण्ड पुत्रोंका पिता बनाया है। उसके विधानमें हस्तक्षेप करना उसकी संसृतिका काम नहीं है। किसीका दान ग्रहण करना और भीख माँगना एक ही श्रेणीके अन्तर्गत आता है। एक-एक मुट्ठी अन्नके लिए हाथ न फैलाकर कोठा भर अन्न ले लेना अथवा खेतखलिहान प्राप्तकर लेना भी भिक्षा ही है। अपने जीते जी अपने पुत्रोंके लिए ऐसा विधान रच जाना किसी भी पिताके पितृत्व पर कलङ्क है। इस बलात् दानको यदि ग्रहण न किया गया, तो तुम लोग भीख माँगोगे, ऐसा कहना स्वयं तुम्हारे अपने ही पौरुषका अपमान है।"

जगन्नाथ क्रोधके मारे थुथला कर रह गया। किन्तु उसकी कमीको भोलानाथने पूरा किया। वह बोला, "आप यह दानपत्र वापस करेंगे, तो हम लोग मर मिटेंगे।"

"भगवान् शङ्करकी जो इच्छा होगी वही होगा," कट्ठू मिश्रने शान्तिके साथ कहा।

"हम मरेंगे, तो हम भगवान् शङ्करको भी साथ लेकर मरेंगे," क्रोधकी सीमा पार करते हुए जगन्नाथने उच्च स्वरसे घोषणा की। पार्वतीने हतप्रभ होकर आञ्चल मुँहमें दे लिया। "जग्गू भैया, इतना बड़ा पातक!" उसके मुँहसे निकला।

"तुम भगवान् शङ्करका संहार करोगे!" कट्ठू मिश्र उपेक्षापूर्ण हँसी हँसे। "तब तो लगता है कि तुम लोगोंके पार्थिव चोलेका अन्त निकट भविष्यमें ही कहीं रम रहा है। अपने प्राणोंकी चिन्ता करो, वत्स।"

"हम अपने प्राणोंकी चिन्ता कर लेंगे, किन्तु तुम्हारे फक्कड़ भोले बाबाने अपने त्यागका ढोल पीट-पीटकर पलोथीके नीचे रत्नों और रजत-स्वर्णका जो ढेर छिपा रखा है उसके उघड़ जाने पर वह किस प्रकार अपना अस्तित्व भक्त जनों में स्थापित रख पायँगे यह देखकर प्राणोंका अन्त होना सन्तोषजनक होगा।"

"अरे, वाचाल मूर्ख!" कट्ठू मिश्रने तिरस्कारसे होंठोंको सिकोड़ते हुए कहा, "तेरे मनमें किस प्रकारकी दुरभिसंधि पनप रही है इसे तनिक खोलकर कह, तभी तेरी दुर्भावनाका पता मुझे चलेगा।"

पार्वती आश्चर्य और उद्वेगसे जगन्नाथके मुखको देख रही थी, जिस पर घोर दुष्टताके भाव परिलक्षित हो रहे थे। उसने अपने जग्गू भैयाका यह रौद्र रूप कदाचित् ही कभी देखा था।

"हम लोगोंको सब मालूम है," जगन्नाथने धमकी भरे स्वरमें, हाथकी मुट्ठी हवामें तानते हुए कहा। "आजसे पाँच बरस पहले राजा बनार और विश्वनाथ मन्दिरके प्रधान अध्यक्ष पण्डित गणेशदत्तने मिलकर, काशीके पुरातन मन्दिर द्वारा पूजा अर्चनामें अर्जित समस्त मूल्यवान् धातुओंको रत्नोंके रूपमें परिवर्त्तित करके विश्वनाथके पुरातन लिंगके नीचे छिपा दिया था। वह रत्नकोश, जिसकी तुलना कुबेरके संचित कोशसे ही हो सकती है, आज भी उसके नीचे दबा पड़ा है। इतनी बड़ी सम्पत्ति अपने नीचे छिपाकर यदि भगवान् शंकर हमें त्यागी होने के लिए प्रेरित करेंगे, तो हम उनके लिंगको ही भग्न कर डालेंगे, और उस कोश पर अपना अधिकार..."

उसी समय एक काण्ड हो गया। धर्मद्रोहके इन स्पष्ट तथा धमकी भरे वचनोंको सुन-सुनकर बहुत देरसे कट्ठू मिश्रके मस्तिष्कका सन्तुलन डिगता जा रहा था। उनका अंग प्रत्यंग काँप रहा था, आँखोंसे अग्नि निकल रही थी, शरीर पर स्वेदकण चमकने लगे थे और साँस तेज़ीके साथ

ऊपर-नीचे आ जा रही थी। उसी मुद्रामें वह उठे, स्तोत्र-पाठके लिए कोनेमें रखी चौकी उठाई और जगन्नाथ पर उसका प्रहार करनेके लिए, डगमगाते हुए उसकी ओर झपटे। उस समय वह कट्ठू मिश्र नहीं रह गये थे, मानसिक पीड़ासे ध्वस्त एक साधारण स्तरके मानव थे।

"बाबा!" पार्वती रोदनपूर्ण स्वरमें चिल्लाई।

उसके चिल्लानेकी आवश्यकता नहीं थी। जगन्नाथ यद्यपि स्वयं क्रोधके मारे जड़ हो गया था, किन्तु भोलानाथने आगे बढ़कर पिताका हाथ थाम लिया और उसे बलपूर्वक मोड़कर चौकी उनके हाथसे छुड़ा ली। पार्वती यह सब रोती-रोती भी आँखें फाड़कर देखती रही, किन्तु उस समय उसके मुँहसे एक चीख निकल गई, जब उसने देखा कि भोलानाथने पिताके सिर पर प्रहार करनेके लिए चौकीका एक पाया पकड़कर अपने सिरसे ऊँचे उठाया। "नहीं, नहीं!" चिल्लाती हुई पार्वती तेजीसे झपट कर दौड़ी और अपने समस्त नारीसुलभ बलसे धक्का दे कर उसने कट्ठू मिश्रको प्रहारकी परिधिसे बाहर कर दिया। पर भोलानाथका हाथ चल चुका था। वह दुर्दान्त प्रहार अपने सम्पूर्ण वेगसे पार्वतीके सिरपर बैठा। एक चीख उस निरीह कन्याके मुखसे निकली। एकदम वह घूम गई। उसके कातर नेत्रोंने असाधारण रूपसे विस्फारित होकर घातकके फटे हुए नेत्रोंमें झाँका, और तत्क्षण ही अपने फटे हुए सिरको हाथोंसे दबाये वह भूमिपर घहरा पड़ी।

इधर-उधर फैल गये लाल रक्तको देखकर सभी उपस्थित जनोंके दिमागकी गरमी क्षण मात्रमें छूमन्तर हो गई। तेज़ीके साथ गड़गड़ हिलते हुए पण्डित कट्ठू मिश्र लड़कीके पास आ कर घुटनोंके बल गिर पड़े और उन्होंने अपना एक हाथ कन्याकी फटी हुई खोपड़ीपर रखा। उनकी पूरी हथेली खूनसे सन गई। काँपती हथेलीको उठाकर उन्होंने अपनी वृद्ध आँखोंकी समस्त शक्तिसे उसे घूरा। फिर वे ही नेत्र बिना पलक

झपकाये ऊपर उठाये। जर्जरित वाणीमें उन्होंने अपने पुत्रोंको सम्बोधित किया :

"दुष्टों, तुम लोग मेरे पुत्र नहीं हो, कोई राक्षस हो, जिन्होंने मेरे पूर्व जन्मके किसी पापके उदयसे मेरे वीर्यसे जन्म ग्रहण किया है। तुमने अपने हाथोंसे एक निर्दोष हँसती-खेलती बालिकाकी हत्या की है। चले जाओ, निकल जाओ यहाँसे। तुम्हारी हत्या करनेके लिए कोई तुम्हें चिल्ला चिल्ला कर बुला रहा है...! चले जाओ, निकल जाओ, हत्यारो, निकल जाओ...!" और कहते-कहते सदा धीरमना, महात्यागी, महातपस्वी कट्ठू मिश्र अपने हृदयमें पोषित रागके शेष स्फुलिंगसे झुलस कर, फूट फूट कर रोने लगे। उन्होंने घबरा कर कन्याकी आँखोंमें जीवन-ज्योति टटोलनेकी चेष्टा की, किन्तु वे सदा-सदाके लिए निश्चेष्ट, अचंचल हो चुकी थीं। शवकी छाती-पर सिर रख कर वह बिलख बिलख कर अश्रुपात करने लगे।

न जाने इस अवस्थामें उन्हें कितनी देर बीती। लेकिन कुछ ही समय बाद उनका यह अविरल अश्रुप्रवाह सूख गया, रुदन एक विकट हास्यमें बदल गया—हा हा हा हा, करते हुए उठे और उन्होंने देखा कि कोठा खाली था। सारे घरमें अट्टहास करते हुए वह घूम गये। कहीं भी हत्यारोंका चिह्न नहीं था। इसके बाद उन्होंने मन्दिरके द्वार खोले, और दौड़ कर भगवान् विश्वनाथकी प्रतिमाके सामने दण्डवत् लेट गये।

गाँवके लोगोंने जब अगले दिन भोजन सामग्री ले कर उनके घरमें प्रवेश किया और आश्चर्य और भयके साथ घटित काण्डका ज्ञान प्राप्त करके, ढूँढखोज कर कट्ठू मिश्रको उठाया, तो वह अपना अतीत भूल गये थे। बीते दिनोंकी उन्हें कुछ भी याद नहीं थी। उनकी आँखें शिवजीके मस्तककी ओर निर्निमेष भावसे देख रही थीं।

●

: एक ज्योतिषी, एक नजूमी :

सतरखके हिन्दू तीर्थ-स्थानको श्मशानमें बदलकर सालार मसूदने अपनी विशाल छावनी डाली थी। नगरसे उठती हुई आग और उससे फैले हुए धुएँकी पृष्ठभूमि पर डोलते हुए यवन सिपाही यमदूतोंकी भाँति बालकोंको धक्के देते तथा स्त्रियोंको घसीटते हुए ग़ुलामोंके तम्बुओंकी तरफ़ ले जा रहे थे। लगता था कि उस विस्तीर्ण श्मशानमें भूतों और पिशाचोंका डेरा है। चारों ओर रुदन, कोलाहल और अशान्तिका साम्राज्य छाया हुआ है। दृष्टिकी सीमा तक गड़े हुए सफ़ेद-सफ़ेद तम्बू उन श्वेत समाधियोंकी याद दिला रहे थे, जिनके भीतर अशान्त युद्धसे जर्जर, जीवित मुरदोंकी भाँति पसरी हुई ममियाँ उत्तप्त साँसें ले रही हों। घोड़े हिनहिना रहे थे, ऊँट बलबला रहे थे और हाथी चिंघाड़ रहे थे। इन सबका स्वर मिलकर ऐसा भान कराता था, मानो भूतराज शङ्करका डमरू अपने भीषण शब्दसे यथार्थं ताण्डवका संगीत उत्पन्न कर रहा हो।

इसी श्मशानके बीचसे रास्ता बनाते लगभग बीस अश्व उस तम्बूकी ओर बढ़े जा रहे थे, जिसके भीतर सालार मसूद बिन सालार साहू, ग़ाज़ी, अपनी नाककी पीड़ासे बेचैन हुआ एक बड़े छपरखटपर लेटा था। इस्पातका कवच पहने जिस स्थानपर सालार मसूद खड़ा अपनी सेनाको दिल्लीकी प्राचीरें तोड़ देनेके लिए उकसा रहा था, वहीं पर पहुँचकर राजा महीपालके पुत्र गोपालने उसकी फ़ौलाद-रक्षित नाकपर गदाका प्रहार किया था। नाककी हड्डी टूट गई थी और उसके मुखके सामनेवाले दो दाँत जड़से उखड़ गये थे। आँखोंको छोड़कर सारे चेहरेपर पट्टी बँधी थी। मुँहका स्थान यद्यपि खुला हुआ था, किन्तु उसमेंसे जो शब्द निकलते थे,

उन्हें ग़ाज़ीका पुराना सेवक मियाँ राजब ही समझ पाता था। छपरखटकी चारों ओर सालार सैफुद्दीन, अमीरहसन अरब, मीर सैयद अज़ीजुद्दीन, मलिक फ़ज़ल आदि प्रमुख लड़ाके सरदार खड़े थे।

इन्हीं लोगोंके मध्यमें बनारससे आया काफ़िला प्रारम्भिक अनुमतिकी बाधा पार करके पहुँचा। उस काफिलेके बीचमें छाती ताने सिद्धनाथ उपस्थित था। उसकी ओरसे नाईने अपनी भाषा में कहा :

"इस्लामके चिराग़की रोशनी दिन दूनी रात चौगुनी फैले। बनारसके काफ़िरोंकी तरफ़से उनका दूत ग़ाज़ी हज़ूरके पवित्र सन्देशका उत्तर लेकर आया है। दूतकी हैसियतके अलावा यह व्यक्ति इल्म नजूममें भारी दख़ल रखता है..." आदमीसे जानवर और जानवरसे आदमी बनानेकी उसकी कलाकी बात नाईने छिपा ली क्योंकि इससे स्वयं उसकी हीनताका भी पता चलता था। उसने आगे कहा, "यह व्यक्ति अपनी भाषामें जो कुछ कहेगा, ताबेदार उसका सही उल्था करके ग़ाज़ी हज़ूरको सुनायगा।"

इसके बाद दोनों ओरसे अनुवादित वार्त्तालाप चला। मियाँ राजबने सालार महमूदकी ओरसे कड़ककर कहा : "सुनाओ, उन दोज़ख़ी इनसानोंने क्या कहा है ?"

सिद्धनाथने कहा, "बनारसके राजा बनारने इस्लामके विजेताके प्रति अपनी मित्रता प्रकट करनेके लिए ग्यारह बाँके घोड़े मूल्यवान ज़ीन और साज़ सहित भेजे हैं। इस अभ्यर्थनाको स्वीकार किया जाय।"

"मंजूर है," मियाँ राजबने अपनी दाढ़ी पर गर्वसे हाथ फेरते हुए कहा। उसने अपनी लाल-लाल बड़ी आँखें सिद्धनाथकी आँखोंसे मिलाई। ये वे आँखें थीं, जिनमें देखनेवाला व्यक्ति प्रायः ही सम्मोहित हो जाता था। कच्चे-पक्के तो रो ही पड़ते थे।

सिद्धनाथने कहा, "राजा बनारने अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें निवेदन किया है कि बनारसका राज्य एक बहुत छोटा सा राज्य है, लेकिन बनारस

शहर सारे हिन्दुस्तानके हिन्दुओंका अति प्राचीन और पवित्र तीर्थ है।"

"इसीलिए काफ़िरोंका दिमाग़ सही करनेको उसका सर किया जाना ज़रूरी है," मियाँ राजब चिंघाड़ा।

"राजा बनारसका यह अति क्षुद्र सेवक ग़ाज़ी बहादुरके इस नक इरादेकी इज्ज़त करता है," सिद्धनाथने चुस्त लहजेमें कहा। "लेकिन साथ ही साथ इस तथ्यसे श्रीमान् को सूचित करना अपना कर्त्तव्य समझता है कि काशीमें आकर मरना प्रत्येक हिन्दू भारतीय अपना परम लक्ष्य मानता है। इससे वह समझता है कि जन्मजन्मान्तरके सारे पापोंसे उसकी मुक्ति हो जायगी।"

"इन काफ़िरोंके दिमाग़की कीलें ढीली हैं। उनपर हथोड़ोंकी चोटें पड़नी चाहिए," मियाँ राजब दहाड़कर बोला।

"इस उपचारसे सेवकको कोई आपत्ति नहीं है," सिद्धनाथने स्थिर वाणीमें कहा। "सेवक तो अपने मित्रोंको इस विकट तथ्यकी ओरसे सावधान करना चाहता है कि ये कीलें मामूली कीलें नहीं हैं। इनकी नोकें बड़ी तीखी हैं। मैं देखना चाहता हूँ कि ग़ाज़ी बहादुरका हाथ उन नोकोंसे बच सकेगा या नहीं।"

अनुवाद समाप्त करते-करते नाईने फिर निवेदन किया कि काशीका यह राजदूत एक बहुत बड़ा ज्योतिषी भी है।

इसपर मियाँ राजब बड़े ज़ोरसे ठहाका लगाकर हँसा। वह बोला, "हिन्दुस्तानियोंके देवता झूठे हैं। उनके पास कौन-सा ऐसा इल्म हो सकता है, जो आनेवाले ज़मानेका हाल बता सके?"

"मनुष्यका भाग्य हाथकी रेखाओं पर अङ्कित रहता है," सिद्धनाथने कहा। "मैं केवल यह देखना चाहता हूँ कि बनारस पर आक्रमण होगा या नहीं।"

"यह हमारा अटल इरादा है," मियाँ राजब बोला।

"लेकिन ग़ाज़ी बहादुरका हाथ कुछ और बात कह सकता है..."

"यह अल्लाहकी मरज़ी है," मियाँ राजब बोला।

"तब अल्लाहने अपनी मरज़ीको ज़रूर ग़ाज़ीके हाथोंकी रेखाओंमें लिख दिया होगा।"

मियाँ राजब कुछ उत्तर देना चाहता था कि उसने सालार मसूदके हाथकी पकड़का अनुभव किया। सालार मसूदने उसका पल्ला पकड़ कर कान नीचे झुकानेका संकेत करते हुए कहा, "हम यह तमाशा देखना चाहते हैं।"

मिया राजब सीधा खड़ा हो गया। कमरसे शमशीर खींचकर वह बोला, "ग़ाज़ी बहादुरकी पाक हथेली तुम्हें देखनेकी इजाज़त दी जाती है। लेकिन अगर तुमने उसे अपने नापाक हाथोंसे छुआ, या किसी क़िस्मकी बेजा हरकत करनेकी कोशिश की, तो फ़ौरन सिर धड़से अलग कर दिया जायगा......चलो!"

सिद्धनाथने अपने दायें-बायें देखा। सभी लोगोंके हाथ अपने हथियारों पर थे। वह छाती तानकर आगे बढ़ा और छपरखटके पास जा कर घुटनोंके बल बैठ गया। ग़ाज़ी सालारकी हथेली छपरखटके बाहर आकर फैल गई। भौंहें ऊँची चढ़ाकर सिद्धनाथने बहुत सूक्ष्मतासे हाथका निरीक्षण किया। फिर वह बोला, "उँगलियाँ।"

ग़ाज़ीने अपनी उँगलियाँ मोड़ लीं। सिद्धनाथने बहुत ध्यानके साथ उन्हें देखा। लगभग दस मिनट तक वह चुप्पीके वातावरणमें ग़ाज़ीकी हथेली देखता रहा। फिर उसने दूसरा हाथ देखनेकी इच्छा प्रकट की। उसकी वह इच्छा भी पूर्ण की गई। उसमें थोड़ा कम समय लगाकर वह उठ खड़ा हुआ और छाती पर हाथ बाँधे फिर अपने पूर्वस्थान पर आ खड़ा हुआ। उसके मुँह पर असाधारण गंभीरता थी। आँखें अर्द्धोन्मीलित थीं। दृष्टि विचार-पूर्ण और स्थिर थी।

सालार मसूदने धीमेसे कहा, "इन नौजवान नजूमीने क्या देखा?"

मियाँ राजब दहाड़ कर बोला, "क्या देखा ?"

सिद्धनाथ जैसे नींदसे चौंका। मियाँ राजबकी ओर दृढ़तासे देखकर वह बोला, "ग़ाज़ी बहादुरके हाथकी रेखाओंमें जो अमिट लेख लिखा है उसे सुनाने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।"

"इसकी वजह ?" क्रोध प्रकट करता हुआ ग़ाज़ीका विश्वासपात्र सेवक बोला।

"पहली वजह यह है कि आप लोगोंको उसपर विश्वास नहीं आयगा।"

"और ?"

"और दूसरी वजह यह है कि मुझे इस हाथको देखकर बहुत बड़ी निराशा हुई है और अपनी जानका ख़तरा पैदा हो गया है।"

"किस तरह ?" मियाँ राजब आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले।

"यही कि अगर मैं सच बोलता हूँ, तो आप लोग यहीं पर मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े उड़ा देंगे।"

इसका उत्तर एक अन्य सरदार सालार सैफुद्दीनने दिया क्योंकि वह समझता था कि मियाँ राजब सही उत्तर नहीं दे सकेगा। उसने कहा, "नौजवान, हम आम तौरसे एलचियोंको नहीं मारते।"

"मुझे इससे संतोष नहीं होता। 'आम तौरसे' आप राजदूतोंको नहीं मारते, लेकिन कभी-कभी 'खास तौरसे' मार डालते हैं। मैं खास तौरसे भी मरना पसंद नहीं करता। आप लोग लड़ाके हैं, शौकसे जिसके साथ चाहें लड़िये। मैं पण्डित हूँ, मेरा काम ज्ञान प्राप्त करना है। वह मैंने कर लिया है। मुझे वापस लौटने की छुट्टी दीजिए।"

"ऐसे तुम्हें छुट्टी नहीं मिलेगी," मियाँ राजब चिंघाड़ कर बोला। "तुम्हें बताना पड़ेगा कि ग़ाज़ी बहादुरके हाथकी लकीरोंको देखकर तुम्हें किस तरह की नाउम्मीदी पैदा हुई है।"

"आप लोगोंको उस पर विश्वास नहीं आयगा," सिद्धनाथने फिर कहा।

"यह हम देखेंगे कि जो कुछ तुम कहते हो उस पर ऐतबार लाया जाय या नहीं," इस बार अमीर हसन अरबने कहा।

"यह भी हो सकता है कि जो कुछ मैं कहूँगा उसमें मेरा कोई स्वार्थ हो—आप लोग किस तरह जानेंगे कि मैं सच बोल रहा हूँ?"

"हम लोग ग़ज़नीके शाही नजूमी हज़रत नूरअलीकी पेशीनगोईसे तुम्हारी भविष्यवाणीका मुक़ाबला करके देखेंगे। वह हमारे साथ हैं और हमारे आगेके हमलोंके बारेमें वह आजकलमें ही पेशीनगोई करनेवाले हैं।"

सिद्धनाथ हँसा। "तब बेहतर है कि आप पहले ही उन्हें मुक़ाबले पर बुला लें। पीठ पीछे अज्ञानके साथ ज्ञानकी भिडंत भयंकर होती है।"

इस पर मियाँ राजबने अपने मालिककी ओर सवालिया निगाह डाली। उसकी ओरसे कोई आज्ञा मिलनेसे पहले ही सरदारोंकी आवाज़ उठी: "हाँ, हाँ, क्या ख़ूब ख़्याल आया है! हज़रत नूरअली इस आदमीके भेजेको चाटकर साफ़ कर देंगे।"

मियाँ राजबके इशारेसे सालार सैफ़ुद्दीन स्वयं हज़रत नूरअलीको लिवा लानेके लिए गये। उनके जाने पर मियाँ राजबने दिलचस्पीके साथ पूछा, "नौजवान्, तुमने ग़लतीसे बहुत विद्वान् व्यक्तिसे टक्कर ले ली।"

"सोनेकी असलियतका पता कसौटी पर घिसनेसे लगता है," सिद्धनाथने कहा। "अगर वह इतने बड़े विद्वान् हैं तो मैं दंड भुगतनेके लिए तैयार होकर आया हूँ।"

"ओह! मियाँ राजब बोला, "तुम किस तरहकी सज़ा पसंद करोगे, नौजवान?"

"मैं उनका शिष्यत्व ग्रहण करूँगा," सिद्धनाथने कहा।

"वह किसी काफ़िरको अपना चेला नहीं बनाते," राजबने कहा।

"तब मैं उनका चेला बननेके लिए मुसलमान हो जाना पसंद करूँगा।"

इस पर उल्लाससूचक तालियाँ बजी। सालार मसूदके चेहरे पर भी मुसकराहट आई। धीमेसे फुसफुसाकर उसने कहा, "ख़ुदा पाक इसी तरह काफ़िरोंको ईमान लाना सिखाता है।"

सिद्धनाथने इस पर कोई टिप्पणी नहीं की। कुछ समय बाद सालार सैफ़ुद्दीनके आगे हज़रत नूरअलीने तम्बूमें प्रवेश किया। सिद्धनाथ तिरछा होकर खड़ा हो गया। हज़रत नूरअलीने ग़ाज़ीके हज़ूर में झुककर सलाम किया और इसके बाद सिद्धनाथकी तरफ़ ग़ौरसे देखा......और सिद्धनाथने सिरसे पैर तक हज़रतका मुआयना कर लिया।

"आप ही हज़रत नूरअली हैं, महाशय?" पहला प्रश्न सिद्धनाथने किया।

"हा, बेटा, उस पाक परवरदिगारके बन्दोंने बन्देका यही नाम चुना है," अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए वृद्धने मुसकराकर कहा।

"आपने अब तक जो पेशीनगोईयाँ की हैं क्या उनका कोई सही हवाला आप दे सकते हैं?" सिद्धनाथने पूछा।

"ज़रूर, बेटा, ज़रूर," वृद्धने कहा। "यह बन्देकी ही ज़बानका कमाल था कि हज़रत सालार मसूद बिन सालार साहू हिन्दुस्तान पर हमला करके यहाँके काफ़िरोंको पाक मज़हब पर ऐतबार लाना सिखा रहे हैं।"

"और?"

"और यह बन्देकी ही पेशीनगोई थी कि ग़ाज़ी बहादुर अगर दिल्ली सर करनेका इरादा करें, तो उसके फाटक एक इशारा पाते ही उनका स्वागत करनेके लिए खुल जायँगे।"

"और?" सिद्धनाथने पूछा।

"और, बेटा, अगर मुझे यह मालूम होता कि कोई हिन्दू नजूमी

मुझसे इस तरहके सवाल पूछेगा, तो मैं ख़ुद उसकी ही अगली-पिछली लिख कर रख लेता......"

हज़रत नूरअलीकी इस बात पर वहाँ उपस्थित सभी सरदारोंकी बत्तीसी खिल गई। किन्तु सिद्धनाथके अप्रतिभ होनेका कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ा। उसने कहा, "तो इसका मतलब है कि इस नकटी राजनीतिके नाटकके आप ही सूत्रधार हैं?"

"क्या मतलब?" हज़रत नूरअलीने बेचैन होकर अपनी दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, हज़रत, हमारे यहाँ एक कथा चलती है, जिसमें लंकाका राजा अपनी नकटी बहनके चक्करमें आकर अयोध्याके राजा रामसे भिड़ पड़ा था और मारा गया था। उस कथासे आपका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ़ यह बताइए कि यह पेशीनगोई भी आपकी ही थी या किसी औरकी कि हज़रत ग़ाज़ी बहादुरका स्वागत करनेके लिए दिल्लीके फाटक इतने फूल बरसाएँगे कि हज़रत सालार वाणीविलाससे भी वंचित हो जायँगे और उनका मुँह पट्टियोंसे बँध जायगा?"

"ऐं!" हज़रत नूरअली नजूमी आश्चर्यसे उसकी ओर ताक कर बोले। "तू क्या कहना चाहता है, लड़के?"

"यही कि शाही नजूमी होनेके नाते आपका यह सबसे बड़ा कर्त्तव्य था कि आप आनेवाली हर विपत्तिसे अपने आश्रयदाताको सावधान कर दें। हमारे यहाँ राजज्योतिषी यहाँ तक बता देते हैं कि उनके स्वामीको किस घड़ी, किस पलमें शनि देवता किस प्रकार कष्ट देंगे और किस प्रकार भगवान सूर्य उनका उद्धार करेंगे। शाही नजूमी हो कर आपसे इतनी-सी बात भी नहीं बताई गई कि दिल्लीके भीषण युद्धमें आपके आश्रयदाता हज़रत ग़ाज़ी बहादुरके दो दाँत किसी उद्दण्ड भारतीय योद्धाकी गदासे टूट जायँगे!"

जिन शब्दोंमें यह आश्चर्य प्रकट किया गया था उन्हें सुन कर अपनेको स्वयमेव सिद्धनाथके पितृतुल्य मान लेने वाले हज़रत नूरअलीकी आँखोंमें घबराहटके चिह्न पैदा हो गये। सम्भवतः वह जानते थे कि सालार मसूदका वह उजड्ड सेवक, मियाँ राजब, जब तक किसी बातपर ध्यान नहीं देता, तब तक नहीं देता, और जब कोई बात उसकी निगाह तले आ जाती है, तो वह वार्त्ता और वार्त्ताके पात्र दोनोंके परखचे उड़ा देता है।

उन्होंने अटपटे शब्दोंमें कहा, "मगर इल्म-नजूममें इतनी बारीकी कैसे आ सकती है ..अ...अ...कैसे आ सकती है?"

"उसी तरह, जैसे विपत्ति आ सकती है," सिद्धनाथने मुसकराते हुए कहा। "आप यहाँ उपस्थित सरदारोंसे पूछ सकते हैं कि यह आपका और आपके इल्मका काम था या नहीं।"

इस अप्रिय बातको हज़रत नूरअली पूछना नहीं चाहते थे। लेकिन प्रश्न हो चुका था और सरदारोंमेंसे किसी न किसीको सबकी ओरसे बोलना आवश्यक था। अमीर हसन अरबने अपनी उँगलीसे हज़रत नूरअलीपर आक्षेप करते हुए कहा, "हाँ, हाँ, यह काम तुम्हारा था। इससे बहुत बड़ा नुकसान हुआ। यह आदमी सही कहता है।"

हज़रत नूरअलीकी नज़र अमीर हसन अरबपर टिक कर रह गई।

उसी समय सालार सैफुद्दीन बोला, "हज़रत, यह आपसे बहुत बड़ी ग़लती हो गई। आपकी ग़लतीकी वजहसे हम लोग अपने ग़ाज़ी बहादुरके बोल सुननेसे तरस गये हैं।"

अब हज़रतकी नज़र सालार सैफुद्दीनपर टँग गई, मगर शीघ्र ही वहाँसे स्थानान्तरित होकर उसने लक्ष्य किया कि मियाँ राजबका हाथ धीरे-धीरे अपनी कमरमें खोंसे हुए ख़ंजरकी ओर बढ़ रहा है। उसकी नज़र अनवरत रूपसे हज़रत नूरअलीकी छातीकी ओर टकटकी लगा कर देख रही थी।

सिद्धनाथने इस स्थितिको लक्ष्य किया। उसने और भी चिल्ला कर

पूछा, "हज़रत, अब भी क्या आप बता सकते हैं कि आपके गाज़ी बहादुरके हाथमें उनके कितने सरदारोंकी मृत्यु लिखी है ?"

मियाँ राजबका बढ़ता हुआ हाथ रुक गया और हज़रत नूरअलीको कुछ राहत मिली। वह बोले, "क्या बकता है, लड़के ! हमारा इल्म-रमल बताता है कि इन हमलोंमें कुछ सिपाहियोंकी जानें ज़रूर तबाह होंगी, मगर अल्लाह उन्हें जन्नतमें जगह देगा।"

"ओह ! अब मैं समझा। आप अब तक इन लोगोंको इसी तरहकी गोलमोल बातें बताते रहे। 'कुछ सिपाहियोंकी जानें ज़रूर तबाह होंगी।' वाह, वाह ! आपका इल्म-नजूम तो बहुत शानदार है !"

अमीर हसन अरबने अक्ल लड़ाई। वह गरज कर हज़रत नूरअलीसे बोला, "होने वाले हमलोंमें कितने सरदारोंकी जानें ज़ाया होंगी इसका जवाब दो, हज़रत नूरअली ?"

नूरअली घबरा कर बोले, "जी, यह तो हरेकके नामसे अलग-अलग रमल फेंक कर बताया जा सकता है कि..."

"गाज़ी बहादुरके हाथमें क्या लिखा है ?" मियाँ राजबने दहाड़ कर पूछा।

"म् म् म् म...।" इसके अतिरिक्त हज़रत नूरअलीके मुँहसे कुछ नहीं निकला। हाँ, होंठ काफ़ी देर तक फड़कते रहे।

सिद्धनाथने अपने शब्दोंपर और भी अधिक बल डालते हुए कहा, "अच्छा, इतना ही बताओ कि क्या गाज़ी बहादुरके हाथकी रेखाओंमें बनारस पहुँचने तक उनके ग्यारह प्रमुख सरदारोंकी मृत्यु नहीं लिखी है ?"

हज़रत नूरअलीके हाथ-पैर ठंढे होने लगे। एकदम ग्याहर सरदारोंकी मृत्यु इस छोकरेने ग़ाज़ी बहादुरके हाथपर लिखी पढ़ ली है और उन्हें उनके इल्म-रमलने एकका भी हाल नहीं बताया ! वह बताये न बताये, लेकिन चमड़ी तो सही-सलामत रहनी ही चाहिए। उन्होंने काँपती हुई

गरदनको सीधी रखनेकी चेष्टा करते हुए कहा, "ग़ाज़ी हज़रत का हाथ देख कर ही बताया जा सकता है..."

मियाँ राजबने कहा, "तो देखो जल्दीसे।"

फुदकते हुए हज़रत नूरअली ग़ाज़ीके छपरखटके पास पहुँचे और उसके फैले हुए हाथको पकड़ कर, नज़रें गड़ा कर नज़दीकसे देखने लगे, ताकि कोई रेखा हाथपरसे उठ कर भाग न जाय। कुछ ही देरमें वह गरदन हिलाते हुए बोले, "या पाक परवरदिगार, रहम कर, रहम कर......इन ग्यारह सरदारोंपर रहम कर। न जाने तेरी रहमतका साया किसपर पड़े और किसके सिरपरसे उठ जाय।"

"कितने सरदारोंकी मौत इसमें लिखी है?" सिद्धनाथने पूछा।

"ग्यारह," हज़रत नूरअलीने झट निवेदन किया।

"इसमें और भी कुछ दिखाई दे रहा है?" सिद्धनाथने पूछा।

"देखता हूँ," हज़रत नूरअली बोले, और वह और भी नज़दीकसे हाथको बारीकीके साथ देखने लगे।

"इसमें यह नहीं लिखा है कि बनारसपर हमला होनेके बाद खुद ग़ाज़ी बहादुरपर यमराज आक्रमण करेगा?" सिद्धनाथने प्रश्न किया।

"एँ!" हौलेसे हज़रत नूरअलीके मुँहसे निकला और उन्होंने एक क्षणके लिए सिद्धनाथकी सूरत देखी। लेकिन यह बात सुनते ही वहाँ उपस्थित सभी सरदारोंकी आँखें कुतूहल और आशंकासे उद्दीप्त हो गईं। वे सब कभी सिद्धनाथको और कभी नूरअलीको देख कर आने वाले शब्दोंको सुननेके लिए कान खड़े करके आगेको झुक गये।

"आह!" हज़रत नूरअलीने आकाशके निमित्त तम्बूकी छतकी ओर ताका और दायाँ हाथ ऊपर उठा कर ख़ुदासे दुआ माँगी, "तेरा ही नाम रहीम है, तू ही परवरिश करता है। या अल्लाह, मल्कुलमौतके बढ़ते हुए क़दमोंको तू ही रोक सकता है।"

मिया राजबने पहलेसे भी अधिक ज़ोरके साथ चिल्ला कर कहा, "साफ़ साफ़ बताओ कि यह मल्कुलमौत तुम्हारी तरफ़ कदम बढ़ा रहा है या हमारे अज़ीज़ ग़ाज़ी बहादुरकी तरफ़ ?"

हज़रत नूरअलीने सालार मसूदके हाथको चूमा और यथाशक्ति गम्भीरता धारण करके उठ खड़े हुए। "ख़ुदा रहम करे," उन्होंने कहा। "ग़ाज़ी बहादुरको बनारसकी तरफ़ नहीं जाना चाहिए। पूरबकी तरफ़की ज़मीनमें बहुत खूँख़ार काँटे छिपे हुए हैं।"

मियाँ राजबने पहले एक गहरी नज़रसे हज़रत नूरअलीकी तरफ़ देखा फिर सिद्धनाथकी तरफ़ देख कर चिल्लाया, "अगर यह सब न हुआ, तो ?"

सिद्धनाथने कहा, "तो उसकी मुनासिब सज़ा पानेके लिए आपके हज़रत नजूमी मौजूद रहेंगे। जहाँ तक बनारसके राजदूतका सवाल है, उसे बहुत जल्दी लौट जाना है, जिससे पाक इस्लामकी सेनाओंका स्वागत करनेके लिए वह बनारसके घाटोंपर मौजूद रह सके।"

मियाँ राजब क्रोधसे चिल्ला कर पैर पटकता हुआ बोला, "तुमने ग़ाज़ी बहादुरके बारेमें पेशीनगोई की है कि..."

"क्षमा कीजिए," सिद्धनाथने दृढ़ स्वरमें कहा। "यहाँ उपस्थित जनोंमेंसे आपके सिवा कोई भी यह नहीं कह सकता कि मैंने किसी प्रकारकी भविष्यवाणी की है। जो कुछ भी भविष्यवाणी की है वह आपके शाही नजूमी साहबकी है। मैं इनमेंसे किसी भी तरहकी जिम्मेदारी लेनेके लिए तैयार नहीं हूँ। मैं केवल एक छोटा-सा राजदूत हूँ, और अपनी हैसियतसे बाहर जाना किसी भी तरह उचित नहीं समझता।"

सालार मसूदने छपरखटपर पड़े-पड़े मियाँ राजबका पल्ला पकड़ कर फिर नीचे झुकनेके लिए संकेत किया। उसकी बात सुन कर वह सीधा खड़ा हो गया। कड़कते हुए वह बोला, "जा कर अपने राजासे कह देना कि पाक

इस्लामका सन्देश उसके कानों तक पहुँचानेके लिए हम बहुत बेचैन रहेंगे। अगर उसने हमारे पहुँचनेसे पहले ही सच्चे धर्मकी शरण न ले ली, तो हम उसका सिर धड़से उतार कर उछाल देंगे।"

सिद्धनाथ मन ही मन मुसकराया और प्रकटमें बोला, "आप लोग बहुत बेचैन रहेंगे यह बात मैं उन्हें ख़ूब अच्छी तरह बता दूँगा।"

मियाँ राजबने घूर कर उसकी ओर देखा। मगर वह नज़रें नीचे झुकाये निश्चिन्त खड़ा रहा। उसकी ओरसे जो क्रियाएँ होनी थीं वे हो चुकी थीं। अब तो प्रतिक्रियाएँ मात्र होनी शेष रह गई थीं, और वे अपने समयपर ही होने वाली थीं। विदेशसे धर्मके नामपर अपनी राज्यपिपासाको तृप्त करनेके लिए आने वाले ये अन्धविश्वासी लोग इस भविष्यवाणीका उल्लंघन उस समय तक नहीं कर पायँगे, जब तक राजा बनारको इस्लाम धर्ममें दीक्षित कर लेनेसे कहीं बड़ा कोई लोभ उनके सिरपर चढ़ कर न बोलने लगे। सोच कर सिद्धनाथकी आँखें चमकने लगीं।

मियाँ राजब तम्बूके द्वारकी ओर मुँह करके शायद पहरेदारको पुकारना चाहता था कि उसने स्वयं ही प्रवेश किया और फ़रशी सलाम झुकाते हुए बोला, "हुज़ूर, कसहला नदीके किनारे दो ब्राह्मण इसी तरफ़ आते हुए पकड़े गये हैं। वे कहते हैं कि उनके पास एक बहुत महत्त्वपूर्ण समाचार है, जिसे सुनने के बाद ग़ाज़ी बहादुरको अपने मार्गमें मात्र फूल ही फूल मिलेंगे, और वह असीम सम्पत्तिके स्वामी बनेंगे। वे अपने नाम जगन्नाथ पण्डित और भोलानाथ पण्डित बताते हैं।"

सुनते ही सिद्धनाथ चौंक पड़ा। मगर उसकी इस मुद्राको किसीने विशेष रूपसे लक्ष्य नहीं किया क्योंकि वह तसवीरसे बाहर हो गया था। तीव्र चपलाकी तरह उसके मस्तिष्क में विचारशृङ्खला कौंधने लगी। जब उसके कानोंमें मियाँ राजबके आज्ञासूचक स्वर सुनाई पड़े तभी वह सचेत हुआ। दूतको लक्ष्य करके मियाँ राजब कह रहा था:

"उन लोगोंको यहाँ हाज़िर करो और बनारसके इस एलचीको इसका घोड़ा देकर रुखसत कर दो।" फिर सिद्धनाथकी ओर मुँह करके वह किचकिचाकर बोला, "जाओ !"

हज़रत नूरअली भीगी बिल्ली बने खड़े थे। सिद्धनाथने देखा कि उसको जाता हुआ देखकर उनके मुखपर शान्ति और सुरक्षाके भावोंने उभरना आरम्भ कर दिया है।

बाहर निकलकर पहरेदारने एक अन्य सैनिकको सिद्धनाथ-सम्बन्धी निर्देश सौंप दिये और दूसरेको उन पण्डितोंको लाने की हिदायत की, जिनको प्रस्तुत करनेकी आज्ञा मिली थी।

अपने पथ-प्रदर्शकके पीछे-पीछे जाता हुआ सिद्धनाथ सोच रहा था : जगन्नाथ और भोलानाथ पण्डित ! वे यहाँ क्यों ? उनके पास ऐसा क्या है, जिससे ग़ाज़ीको विजय ही विजय प्राप्त होगी ? इतनी धनसम्पत्ति उनके पास कहाँ से आ गई। क्या उन्हें कुबेरका कोश मिल गया है ?

कोलाहलके बीचसे गुज़रते हुए उसने अपने आगे-पीछे नज़र दौड़ाई। एक ओर दूरपर धूलका गुब्बारा-सा उड़ रहा था। उसके साफ़ होनेपर उसे जगन्नाथ और भोलानाथकी आकृतियाँ दिखाई पड़ीं। वे ही तो थे। उसकी तीव्र दृष्टि उन्हें पहचाननेमें भूल नहीं कर सकती थी। उसने माथेपर हाथ फेरा। कहीं ये लोग उसका किया-धरा सब चौपट तो नहीं कर देंगे ?

सालारके सिपाहियोंने उसे छावनीसे काफ़ी आगे ले जाकर छोड़ दिया। अब वह था और उसका अश्व था। वह साँस छोड़कर काशीकी दिशामें दौड़ पड़ा। अब उसे डेढ़ सौ कोसका अन्तर जल्दी-से-जल्दी पार करना था। ज्योतिष विजेताके लिए अब भविष्य सन्दिग्ध हो गया था।

●

: कट्टू का शाप :

एक तपते हुए दिन और दो काली रातोंकी मंज़िल पार करके सिद्धनाथने बनारसमें प्रवेश किया। जब पहुँच गया, तब उसे विश्वास आया कि वह नरक से वापस आ गया है। गङ्गाकी छातीपर असहाय लेटकर अपने घोड़े सहित नावपर पार जाते समय एक अनिर्वचनीय शीतलताने उसके दुखते हुए अङ्गोंपर मरहमका काम किया। मगर काशीके भविष्यके विचार अब भी उसे उसी भाँति त्रस्त कर रहे थे, जैसे यवन छावनीसे चलते समय।

सीधा घर न जाकर वह बनारसके राजभवनमें पहुँचा। प्राङ्गणमें पहुँचते ही उसके आनेकी सूचना महामात्यको दी गई। रामेश्वर शुक्ल नङ्गे पाँवों दौड़े आये। आते ही उन्होंने सिद्धनाथको घोड़ेपरसे बच्चेकी तरह उतार कर छातीसे लगा लिया। बोले, "मैं तो आशा छोड़ बैठा था। किन्तु प्रबोध मिश्रके वंशका दीपक अभी युगों-युगों तक जलेगा।"

सिद्धनाथको आश्रय पाकर ऐसा अनुभव हुआ मानो अब गिरा, अब गिरा। थके स्वरमें वह बोला, "महामात्यजी, आपका स्नेह पाकर तो मैं अग्निमें भी कूद जाऊँगा। काशीमें अभी बाहरसे कोई सहायता आई कि नहीं?"

"अभी तक तो कोई नहीं," रामेश्वर शुक्लने कहा। "यवन सेनापतिने क्या उत्तर दिया है?"

किसी प्रकार उनके हाथका सहारा लेता हुआ वह बोला, "चलते समय तक निश्चित था। मगर जब उसका तम्बू छोड़कर बाहर आया, तो सब कुछ फिर अनिश्चित हो गया। अफ़सोस कि अभी सालारके नाख़ूनोंको बढ़नेमें

दस बारह-दिन लग जायँगे...तब तक काशीपर आक्रमण होनेका भय बना ही रहेगा।"

"लगता है तुम मारा-मार चले ही आ रहे हो...चलो, चलो...भीतर चलो। थोड़ा विश्राम कर लो। बादमें सब बातें विस्तारसे सुनूँगा।"

उनके साथ जाते-जाते सिद्धनाथने कहा, "शस्त्रोंको बाँट दीजिए, महामात्यजी। सेनाएँ एकदम तैयार रखिए। कुछ आश्चर्य नहीं..."

"तुम अब चिन्ता न करो," महामात्यने कहा। उनका संकेत पाते ही परिचारकगण दौड़ पड़े और उन्होंने सिद्धनाथको हाथों ही हाथोंमें सम्भाल लिया। अब वह प्रायः अर्द्धचेतन हो चला था। मालिश, स्नान, हल्का भोजन और पूरे एक प्रहरकी नींदके बाद वह इस योग्य हुआ कि शुक्लजीसे अन्य बातोंकी पूछताछ कर सके और उन्हें सालार मसूदसे भेंटका पूरा विवरण बता सके। पता चला कि जितने दूत भेजे गये थे उनमेंसे आधेसे अधिक वापस लौट आये थे। सभी छोटे स्थानोंसे काशीकी रक्षाके लिए सेनाएँ चल पड़ी थीं। जब ये सब चर्चाएँ समाप्त हो गईं, तो शुक्लजीने कहा :

"ज्योतिष प्रवर, पीछे एक बड़ी दुर्घटना हो गई है। कद्दू मिश्रकी स्मृति लुप्त हो गई है।"

सिद्धनाथ एकदम अपने आसनसे उछल पड़ा। "कैसे?"

"पता नहीं पिता और पुत्रोंके बीच किस बात पर विवाद हुआ, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हींमेंसे किसीके हाथों उनके द्वारा पालित कन्या गार्वतीका सिर फूटा और उसका देहावसान हो गया! इस पीड़ासे कद्दू मिश्र अपनी स्मरणशक्ति खो बैठे हैं। हम लोग उन्हें उटाटरियासे यहाँ ले आये हैं। बहुत खोज कराने पर भी उनके पुत्रोंमेंसे कोई हमारे हाथ नहीं लगा।"

"अब वे कभी आपके हाथ नहीं लगेंगे, शुक्लजी," सिद्धनाथ कुछ

विचार करता हुआ बोला। "पण्डित कट्ठू मिश्र अपनी वर्त्तमान अवस्थाकी ओरसे तो चेतन होंगे ?"

"नहीं," शुक्लजीने कहा, "वह बस एकटक ऊपरकी ओर देखते हैं। नेत्रोंको क्षण भर विश्राम देनेके लिए पलकें झपकती हैं, किन्तु पुतलियाँ एक ही कोण पर स्थिर हैं। बड़ा भयंकर रूप हो गया है।"

"मैं देखूँगा," सिद्धनाथ ने कहा।

सिद्धनाथको लेकर महामात्य उस विश्राम कक्षमें पहुँचे, जहाँ स्वयं राजा बनार, काशीके बहुतसे स्वनामधन्य वैद्य, तथा दासियों परिचारिकाएँ असहाय और चिन्तित अवस्थामें कट्ठू मिश्रकी परिचर्या कर रहे थे। किन्तु कट्ठू मिश्र बिलकुल निश्चेष्ट बैठे थे। आँखोंकी पुतलियाँ ऊपरकी ओर निहार रही थीं। मुख पर भय और उद्वेगके चिह्न थे। साँस समगतिसे चल रही थी। वैद्यगण बाँसकी नलीसे दूध पिलानेकी व्यवस्था कर रहे थे।

सिद्धनाथने दूरसे ही उनकी मुखाकृतिको ध्यानसे देखा। वैद्यराज महाराज बनारसे जो कुछ कह रहे थे वह भी सुना :

"उन्मादकी चरम सीमा है। बहुत सावधानीकी आवश्यकता है, महाराज! रक्तचाप बहुत तीव्र है। मस्तिष्कके किसी प्रधानतन्तुमें रक्तके गाढ़े कण फँस गये हैं। किसी भी औषधसे यह अवस्था दूर नहीं हो पा रही है। अधिक देर यही अवस्था रहनेसे मृत्यु हो सकती है। एक दो दिनसे अधिक यह अवस्था नहीं टिकेगी।"

अब तक शुक्लजी राजा बनारको सिद्धनाथके सम्बन्धमें सब सूचनाएँ दे चुके थे। अतः आवश्यक सावधानीका आदेश दे कर वह फिर मिश्रजीकी परिचर्यामें आ जुटे थे। राजवैद्यकी बातें सुनकर उन्होंने निराशासे सिद्धनाथकी ओर देखा। तभी सिद्धनाथने उन्हें बाहर चलनेका संकेत किया। महामात्य, राजा बनार और सिद्धनाथ बाहर निकल कर दूसरे कक्षमें पहुँचे।

सिद्धनाथने कहा—"महाराज, किसी प्रकारकी बाहरी चोट तो मालूम नहीं होती ?"

"नहीं," राजा बनारने कहा।

"तब केवल मानसिक चोट है......"

"उनकी बच्चीकी हत्या की गई है......" राजा बनार कहने लगे।

"नहीं, महाराज, हत्या ही एक मात्र कारण नहीं है," सिद्धनाथने कहा। "जिन कारणोंसे हत्या हुई वे अधिक प्रमुख हैं और वे कारण कट्टू मिश्रके नितांत व्यक्तिगत कारण नहीं हैं। मिश्रजी जैसे त्यागी व्यक्तिका मस्तिष्क मात्र व्यक्तिगत संतापसे विशृङ्खलित नहीं हो सकता।"

"तब......?" महामात्य और राजा बनारने आश्चर्यसे सिद्धनाथको देखा। "तब वे कारण क्या हैं ?"

"उन्हें सिवा कट्टू मिश्रके और कौन बता सकता है ?" सिद्धनाथने कहा। "चार ही व्यक्तियोंके बीचमें यह काण्ड घटित हुआ है। एक मर चुका है। दो सालार मसूदके शिविरमें कोई दुरभिसंधि लेकर गये हैं..."

"कौन ? पण्डित जगन्नाथ और भोलानाथ ?" आश्चर्यसे राजाने पूछा।

"हाँ, मैंने उन्हें आते समय सालार मसूदसे भेंट करनेके लिए तत्पर देखा था। अवश्य ही इसमें कोई गहरा भेद है। वह यदि नहीं जाना जायगा, तो आनेवाली विपत्तिका पूर्वाभास मिलना कठिन है ! मिश्रजीका मानसिक उपचार भी कल होना चाहिए। तब तक राजवैद्य जो कुछ करना चाहें कर लें।"

"मानसिक उपचारसे तुम्हारा क्या अर्थ है ?" महामात्यने पूछा। राजा बनारने भी प्रश्नसूचक दृष्टि उसके मुख पर डाली।

दो क्षण चुप रहकर सिद्धनाथने कहा, "महाराज, यह बहुत विषम उपचार है—एक प्रकारसे अंधेरेमें ढेला फेंकना है। यह तो आप जानते

ही है कि हमारा साधारण मस्तिष्क उन्हीं बातोंको ग्रहण करनेमें समर्थ होता है, जो उसके अभ्यासके अनुकूल हों। अनुकूल अवस्थाओंमें जहाँ हमारा मस्तिष्क फलता-फूलता है और वृद्धिको प्राप्त होता है, प्रतिकूल अवस्थाओंको वहाँ वह तुरंत घृणा, जुगुप्सा, क्रोध, उद्वेग, अशान्ति आदि रूपान्तरणों से प्रकट करता है और उसका क्षय होता है। उन प्रवृत्तियोंका अतिरेक कभी-कभी चेतनाका नाश कर देता है। जिस व्यक्तिको रक्त देखनेका अभ्यास नहीं होता, वह साधारण-सा खूनखराबा देखकर अचेत हो जाता है। इससे सिद्ध है कि हमारा मस्तिष्क विविध भावनाओंकी तीव्रताको उतने ही परिमाणमें ग्रहण कर सकता है, जितनी उसके मस्तिष्ककी परिधि दैनिक और क्रमिक विकाससे विस्तृत हो चुकती है।"

"यह समझमें आनेवाली बात है," राजा बनारने कहा।

"तब, महाराज, कड्ड मिश्र जैसा अनुभवी और उदासीन मनुष्य केवल एक प्रियजनकी हत्यासे ही इतना क्षुब्ध हो जाय कि चेतना खो बैठे, यह बात असङ्गत है। हो सकता है कि बचपनसे कोई विश्वास, कोई आशा, कोई आकांक्षा उन्होंने कण-कण करके पाली हो और वह सहसा ही उस दिन भूमिसात् हो गई हो। अचेत अवस्थामें भी आँखें खोले रहना सिद्ध करता है कि मानसमें सञ्चित घटना-शृङ्खलाकी जो कड़ियाँ उस आकस्मिक प्रहारसे टूट गई हैं। उनके जुड़नेसे उनका मस्तिष्क जीवनदर्शनके उस क्रमिक तर्कको ग्रहण कर लेगा जो हमारी चेतनाका प्रमुख तत्त्व है।"

"किस प्रकार वे कड़ियाँ जुड़ सकती हैं?" महामात्यने पूछा।

"उनके मस्तिष्क पर यथार्थ भौतिक घटनाओंकी जो छाप पड़ी है उनका सामञ्जस्य स्थापित करनेसे," सिद्धनाथने निवेदन किया, "और उनके मानसके भीतर विराजमान 'अहं' तथा 'पर' नामक दो व्यक्तित्वोंको एक-दूसरेकी स्थिति भली प्रकार समझा देनेसे।"

"एक ही व्यक्तिके मानसके भीतर 'अहं' तथा 'पर' ये दो व्यक्तित्व कैसे हो सकते हैं ?" राजाने पूछा।

सिद्धनाथके नेत्र चमके। उसने कहा, " 'अहं' वह होता है, महाराज, जो कहता है कि राजाका दान स्वीकार न कर। 'पर' वह होता है, जो कहता है कि स्वीकार करना ही उपादेय है, अभीष्ट है, कल्याणकारी है।"

"कुछ समझमें नहीं आता," महाराज बनारने कहा। "आप जो उपचार करना चाहें कीजिए।"

"तो मुझे पहले तथ्य सग्रह करने दीजिए। कुछ महामात्यजी बतायेंगे, कुछ मुझे मालूम है, और कुछ धर्माध्यक्षजी। इस उपचारसे पहले यह जानना आवश्यक है कि कट्ठ मिश्र क्या हैं। इसके बाद मैं और तारा मिश्रजीके सम्मुख 'अहं' और 'पर' का अभिनय करेंगे। यही एकमात्र राह है।"

राजा बनार फिर कट्ठ मिश्रके पास चले गये। सिद्धनाथने महामात्यसे बहुत देर तक बातचीत की। फिर आवश्यक प्रबन्धका निर्देश देकर वह धर्माध्यक्षजीसे मिलनेके लिए उनके घर रवाना हो गया। उस दिन लगभग आधी रात तक वह पण्डित गणेशदत्त तथा उनकी पुत्रीसे बातचीत करके अपनी योजना उन्हें समझाता रहा।

काशीमें एक ओर यवनोंके सम्भावित आक्रमणको रोकनेके लिए व्यवस्था होती रही, दूसरी ओर एक नवीन और अभूतपूर्व नाटकके खेलनेका आयोजन होता रहा। यह नाटक कर्पूरमञ्जरी जैसे नाटकोंसे भिन्न था। पलक मारते इस नाटककी सूचना काशीके दिग्गज पण्डितोंको मिल गई और वे अपनी उत्सुकताका भार वहन न कर पानेके कारण राजभवनकी ओर दौड़ पड़े।

अगले दिन प्रातःकाल, उगते हुए सूर्यकी किरणें जब गंगाके शीतल जलमें स्नान कर रही थीं—राजभवनके एक विशाल कक्षमें उस नाटकका

सूत्रपात हुआ। चारों ओर चोटीके सभासद्, राजवैद्य तथा उनके सहयोगी, महामात्य, धर्माध्यक्ष आदि बैठे थे। एक आसन पर स्वयं महाराज बनार उपस्थित थे। एक प्रकाशमान कोनेमें कट्टू मिश्रका आसन था। उनकी दृष्टि एकटक सामनेकी ओर, ऊपर टिकी हुई थी। अगल-बगल दो सेवक खड़े पंखे झल रहे थे। उनके पीछे, उनके कन्धे पर हाथ रखे धर्माध्यक्षकी पुत्री तारा खड़ी था। उसी समय एक द्वारसे सिद्धनाथने अपनी स्वाभाविक वेश-भूषामें प्रवेश किया। ताराने कड़ककर पूछा : "तू कौन ?"

"मैं ?" सिद्धनाथने कहा, "मैं कट्टू मिश्र हूँ।"

"तू कट्टू मिश्र कैसे हो सकता है ? कट्टू मिश्र तो मैं हूँ।"

"होगा," सिद्धनाथने कहा। "संसारमें सैकड़ों कट्टू मिश्र हैं। मैं भी उन्हीं में से एक हूँ।"

"होगा," ताराने कहा। "इस संसारमें मेरे जैसा कट्टू मिश्र तो एक ही है। जिसने भगवान् विश्वनाथकी ओर अपना मन लगाया है, जिसने त्यागको ही समस्त धर्मोंका मूल माना है, जिसने सारे शास्त्रोंका निचोड़ शिवके तीसरे नेत्रमें पा लिया है—वही मैं कट्टू मिश्र हूँ।"

"तो तू अपने अहंमें डूबा रह," सिद्धनाथने कहा। "मैं तो एक ब्राह्मण गृहस्थ हूँ। आज मेरे घर पुत्र-रत्नका जन्म हुआ है। सोचा था कि संसारमें जितने भी कट्टू मिश्र मिलेंगे उन सबको निमन्त्रण दूँगा कि वे मेरी प्रसन्नतामें योग देकर उचित प्रसाद ग्रहण करें। तुझे भी निमन्त्रण है।"

"अरे मूर्ख, एक पुत्रके उत्पन्न होने पर तू कितना फूल रहा है ! 'पर' में तेरी कितनी रुचि है। अरे, तेरे घर पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है, तेरे एक पैरमें एक भारी पत्थर बँध गया है। मोक्षका सुख त्यागसे मिलता है। तेरे साथ एक जीवित परिग्रह बँध गया है। तेरी आत्माको मुक्ति कहाँ !"

"वाह, रे मित्र, तू तो बहुत ऊँची-ऊँची बातें करता है !" सिद्धनाथने कहा। "इस हिसाबसे तो एक पत्थर मेरे दूसरे पैरमें पहलेसे ही बँधा हुआ

है। दोनों पैरोंमें पत्थर बँध जानेसे मैं तो कभी भवसागरको तैर ही नहीं सकता! अरे पागल, ये पत्थर नहीं, काष्ठ हैं, जिन दोनों पर एक-एक हाथ रखकर मैं अथाह समुद्र पार करूँगा।"

"इन मूर्ख और उद्दण्ड पुत्रोंके सहारे तू भवसागर पार करेगा! हा, हा, हा! तब तो तू बहुत साधारण कट्टू मिश्र है। तेरे साथ कोई वास्ता रखना भी अपनेको पाप-पंकमें डुबोना है। अरे, ये तो वे ही छोकरे हैं, जगन्नाथ और भोलानाथ, जो पूर्व जन्ममें प्रेतयोनिमें विचर रहे थे और मन्त्रसे विषाक्त किया हुआ तालका पानी पी लेनेके कारण तेरी आत्माके साथ चिपट गये थे—जिन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि अगले जन्ममें भी तुझे मुक्ति-लाभ नहीं करने देंगे।"

"अब तू मुझे बहकानेको गपोड़संख बघारने लगा, रे पामर!" सिद्ध-नाथने कठोर मुद्रा धारण करके कहा। यदि ऐसे ही त्यागका तू दम्भ करता है, और मुझे उपदेश देने चला है, तो उस समय तू कहाँ सो गया था, जब संसारके सारे कट्टू मिश्र मिल कर मेरा विवाह रचा रहे थे!"

"उस समय मैं समझता था कि सहधर्मिणी स्वर्गकी सीढ़ी है। यह तो बादमें चल कर ही पता चला कि वह मात्र वासनाके पंकमें डूबी साधारण नारी-प्रतिमा है, जिसने अपने कठोर करोंको तेरे गलेमें डाल कर जड़ता धारण कर ली है..."

"अरे दम्भी" उस समय जो जिस समझके सहारे तूने कर्म किया और उसमें अन्य प्राणियोंको फाँस लिया, वही समझ बादमें चल कर पलट जानेसे तो उन प्राणियोंके ऊपर पड़े तेरे कर्मके प्रभावका परिमार्जन नहीं हो जायगा। तुझे अपनी इस ओछी समझपर भावी कर्म निर्धारित करनेका क्या अधिकार है, जब तक तू उन प्रभावित प्राणियोंसे अनुमति न ले ले?"

आश्चर्यके साथ कुछ सम्मानित सभासदोंने लक्ष्य किया कि कट्ट

मिश्रकी पलकें साधारणसे अधिक तेज़ीके साथ झपकीं। सिद्धनाथकी दृष्टि उसी ओर थी। उसके मुखपर प्रसन्नताके चिह्न उभरे। उसने राजा बनारको उस ओर ध्यान देनेका संकेत करते हुए ताराको सम्बोधित किया :

"रे अहं, जो कर्म तेरी आत्मासे तेरी चेतनावस्थामें चिपट गये हैं, तू उनसे असमयमें ही मुक्ति पा लेना चाहता है। तुझे मेरा निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ेगा। तुझे मेरे पुत्रोंका पोषण करना पड़ेगा। तू कितना ही बड़ा त्यागी बन, किन्तु तुझे इसी घरमें रहना पड़ेगा...नहीं तो जहाँ भी तू जायगा वहीं मैं तेरा पीछा करूँगा और तुझे खींच कर फिर संसारमें वापस ले आऊँगा। मेरा नाम 'पर' है और कट्टू मिश्रकी बुद्धिको ठिकाने रखना मेरा काम है। क्योंकि मैं ही तो कट्टू मिश्र हूँ।"

मिश्रजीकी पलकें और अधिक गतिके साथ झपकीं और सिद्धनाथको अनुभव हुआ कि उनके मुखकी मुद्रा कुछ विकृत हो गई, मानो वह किसी अज्ञात कष्टसे छुटकारा पाना चाहते हों।

कुछ समय विश्रान्ति रही। फिर ताराकी आवाज़ कक्षमें गूँजी : "अरे 'पर' तू सो रहा है या जाग रहा है?"

"सोना तेरा काम है। मैं हर समय जागता रहता हूँ," सिद्धनाथका उत्तर मिला।

"देख, अब तेईस वर्ष हो गये। मैंने आज तक तेरे पुत्रोंको अपनी सन्तान मानकर पालन-पोषण किया। क्या अब भी मैं उस ऋणसे उऋण नहीं हुआ, जो मेरी अज्ञानावस्थामें पच्चीस वर्ष पूर्व मेरी आत्माके साथ चिपक गया था?" ताराने प्रश्न किया।

"अहा! कितना बड़ा सत्यवादी बनता है! क्या तूने मेरे पुत्रोंका पुत्रवत् पालन-पोषण किया है? झूठ है। तूने अन्धे बंसीधरकी कन्या पार्वतीको पाल लिया है। अपने त्यागके दम्भमें तूने कभी अपने हृदयका

स्नेह मेरे पुत्रोंको नहीं दिया और अपनी आत्माकी उन्नतिके सामने उनके ऐहलौकिक स्वार्थोंकी सदा उपेक्षा की। इससे बचकर तूने पितृहृदयका सारा स्नेह परकन्या पर ढाल दिया है, जिससे तू त्यागी भी बना रहे और तेरे अभावकी पूर्ति भी होती रहे। तू प्रवञ्चक है।"

सब लोगोंकी दृष्टि कट्ठू मिश्रके मुखकी ओर थी। राजवैद्य आँखें फाड़कर सूक्ष्मसे सूक्ष्म परिवर्त्तनको भो लक्ष्य कर रहे थे। अब मिश्रजीके हाथोंमें कम्पन आरम्भ हो गया था और मुखकी खाल पर झुर्रियाँ और अधिक दिखाई पड़ने लगी थीं।

"लगता है तू साङ्गोपाङ्ग पापसे ही निर्मित है। संसारकी माया तुझे अच्छी लगती है। स्वर्ग और मोक्ष पर तेरा विश्वास नहीं। भगवान् विश्वनाथके तेज और ताप पर मुझे आस्था नहीं।"

"हा, हा, हा, हा!" सिद्धनाथ ज़ोरसे ठहाका लगाकर हँसा। "रे पामर, इस संसारमें रहकर भी, इसका आश्रय चाहकर भी, इसकी मिट्टीमें रमकर भी जो मनुष्य स्वर्ग और मोक्षकी ओर दृष्टि उठाये रहते हैं, वे न केवल अहङ्कारी और प्रवञ्चक हैं, बल्कि सामाजिक अपराधी हैं। वे खाते इस देशका हैं, उपजाते विदेशके लिए हैं। वे देशद्रोही है। जिन्होंने रतिको अधर्म और विरतिको धर्म समझ लिया है वे वर्त्तमान विरतिकी ओटमें, भावी रतिकी चिन्तामें आठों प्रहर रत रहते हैं। उनके पुत्र जब इहलोककी बातें करते हैं, तो वे उन्हें नीच और मूर्ख समझते हैं और उन्हें प्रताड़ित करते हैं। रे दम्भी, मेरे पुत्रोंको तूने सौतेले पिताकी तरह घृणा करके पाला है। इसीलिए वे आज अनाज्ञाकरी और धनपिपासु हो गये हैं। तूने मेरा, कट्ठू मिश्रका, सर्वनाश ही कर डाला है।"

आसनपर तकियोंके सहारे पड़े हुए कट्ठू मिश्रका सिर तनिक हिला। ताराने इससे उत्साहित होकर कहा: "अरे 'पर', तू कितना बड़ा धर्मद्रोही और अज्ञानी है! अपने अज्ञान और ऐहलौकिक कामनाको त देश. पत्र.

बन्धु-बान्धव, स्नेह आदि सांसारिक आडम्बरोंकी ओटसे पोषण देना चाहता है। आत्माका संसारमें कोई नहीं है। एक मात्र शिव ही सबका भाग्य-विधाता है। आत्माको अन्तमें चलकर शिवमय हो जाना है। वही उसका शुद्ध स्वरूप है। जब उसका तीसरा नेत्र..."

"चुप रह, रे 'अहं'के भूत ! तू बार-बार हठ करके शिवके जिस तीसरे नेत्रकी चर्चा करता है वह ईर्ष्यासे पूर्ण है और संसारके प्रत्येक सुखको नष्ट कर देना ही उसका धर्म है। उस ईर्ष्यालु नेत्रमें देखनेकी शक्ति नहीं है, संहारकी शक्ति है। इस शक्तिके बलपर उसने लोकमानवको भीरु और अकर्मण्य बना दिया है। तू जिन्हें सांसारिक आडम्बर कहता है वे जीवित, चेतनावान मानव हैं और तू ने अपनी सांसारिक, ऐहलौकिक प्रगतिके लिए उन्हें जानबूझकर उत्पन्न किया है। तू ने आत्माका स्वांग उत्पन्न करके, धर्म और मोक्षकी आड़ लेकर, उन जीवित 'आडम्बरों'को जहाँ-तहाँसे भीख माँगने, जिस-तिसके धन पर दृष्टि गड़ाने और देशको युद्धकी भीषण अग्निमें धू-धू करके जलानेको मजबूर कर दिया है। वे आज यवन सेनापति सालार मसूदके शिविरकी ओर दौड़े जा रहे हैं ! तेरी पालित दुहिता पार्वतीके वे हत्यारे, तेरे ही प्रमाद, तेरे ही कर्मोंसे प्रतिक्रियाकी शक्ति प्राप्त करके, उस दुष्ट, क्रूर, हत्यारे, निर्दयी यवन सरदारसे जा मिले हैं ! उसकी ग्यारह लाख सेनाको लेकर वे आयँगे। काशीके घाटोंके पत्थर गङ्गाके लाल पानीसे रक्तिम हो जायँगे। आगकी लपटोंसे काशीके उत्तुङ्ग भवन लपलपाती ज्वालाओंको आकाशमें उछालेंगे। हज़ारों लाखों ललनाओंका सतीत्व हरण होगा और बच्चोंकी छातियोंमें भाले घोंप दिये जायँगे ! फिर उनके साथ उमहाकर दौड़ता हुआ यवन सरदार...!"

कट्टू मिश्रका सारा बदन थर-थर काँपने लगा, मुख विकृत होकर बार-बार इधर-उधर डोलने लगा। कक्षमें सूई भी गिरती, तो आवाज़ सुनाई पड़ती। सबकी दृष्टि रोगीके अशान्त शरीरकी ओर एकटक लगी थी।

मिश्रजीके हाथों और पैरों में हड़कल मच गई। मुँहसे झाग निकलने लगा। वह सिरको बार-बार उठाकर तकिये पर पकटने लगे। उनके होंठ कुछ बोलनेके लिए फड़फड़ाने लगे।

ताराने चिल्लाकर कहा, "और बोल ले, तू अपनी इस सर्प जैसी जिह्वासे और क्या कहना चाहता है?"

"कहूँगा," सिद्धनाथ दहाड़ कर बोला। "तेरे धर्माचारके पीछे छिपे पापाचारकी गाथा सारे संसारको सुनाऊँगा। तू ही है, जिसने प्रकारान्तरसे दीन और दुखी, अंधे शिवभक्त बंसीधरकी कन्याकी हत्या करके उसकी बैसाखियाँ तोड़ दी हैं। तू ही है जिसने दान न लेनेका दम्भ पालनेसे पहले अपने पुत्रोंको सम्मानपूर्वक जीविका अर्जन करना नहीं सिखाया और उन्हें कुमार्गी बनाया। तू ही है—ओ नरपिशाच—तू ही है, जो विदेशी राक्षसको काशीकी पवित्र नगरी पर चढ़ाये ला रहा है। देख, वह कालदूत दौड़ता हुआ आ रहा है, वह ताण्डवमुद्रामें स्थित तेरे शिवके मंदिरमें घुस गया है—और वह तेरे शंकरके तीसरे नेत्रकी चमकनेवाली मणिको अपने बढ़े हुए नाख़ूनोंसे कुरेद कर बाहर निकाल रहा है......!"

"सावधान!" सहसा ही कट्टू मिश्रका कर्णभेदी घोष विशाल कक्षके कोने-कोनेमें गूँज गया। सभी लोग उत्तेजित होकर अपने-अपने स्थानोंसे खड़े हो गये। अवांछित होते हुए भी उन्हें सिद्धनाथके कुवचनोंको सुनना पड़ा था क्यों कि उस समय वह मात्र अभिनेता था। किन्तु उसके अभिनयसे कट्टू मिश्रमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन घटित हो गया था। उन्होंने गंभीर घोषसे फिर गर्जन किया : "सावधान! राजा बनार, सावधान! तूने बलात् दान देनेकी चेष्टा करके मेरे कुल पर कलंक लगाया है। तूने मेरे कुल पर हत्याका पातक लगाया है। मैं तुझे शाप देता हूँ....."

सभी स्तब्ध थे। सभीके हृदय काँप रहे थे। सिद्धनाथ और ताराने भी यह नहीं सोचा था कि कट्टू मिश्र इस प्रकारसे चेतनावस्थाको प्राप्त होंगे।

कद्दू मिश्रकी दृष्टि अब ऊपरसे धीरे-धीरे नीचे आनेकी चेष्टा करके भी ऊपर जा पहुँचती थी। उन्होंने हाथ आगे करके राजा बनारकी ओर संकेत करनेकी मुद्रा अपना ली थी। वह कह रहे थे :

"......मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू नष्ट होगा......तेरा राज्य नष्ट होगा......तेरा संहार होगा......तेरी गद्दी पर मेरे पुत्र बैठेंगे......तेरे राज्य पर मेरे वंशज राज्य करेंगे......! राजा बनार, सावधान, सावधान, सावधान......!" कहते-कहते वह उछल कर अपने आसन पर खड़े हो गये, और काँपते हुए पगोंसे खड़े रहनेकी चेष्टा करते हुए चिल्लाये : "सर्वनाश। दौड़ो। भगवान् शंकरका तीसरा नेत्र खुल रहा है......"

उसी समय कक्षके द्वार पर महाप्रतिहारका तीव्र घोष सुनाई पड़ा : "महाराज, महामात्य जी, दौड़िए, बाहर आइए......! यवन सरदार सालार मसूदका दुर्दम्य सैन्य-दल काशीसे दो कोसके अंतर पर दिखाई पड़ा है और तेजीसे बढ़ा आ रहा है ......!"

"शंकरका तीसरा नेत्र खुल रहा है!" कद्दू मिश्र गंभीर घोषमें चिल्लाते रहे : "शंकरका तीसरा नेत्र खुल रहा है...!"

उसी समय वह भरभरा कर पहले आसनपर गिरे, फिर लुढ़कते हुए फ़रशपर आ रहे। जब तक परिचारकोंने उन्हें सम्भालकर उठाया, तब तक कक्षको छोड़ कर सभी राजपुरुष हड़बड़ा कर बाहर झपट चले।

सिद्धनाथ, तारा और धर्माध्यक्ष वहाँसे निकल कर एक दूसरे कक्षमें पहुँचे। तारा एकदम घबरा गई थी। वह बोली : "यह शाप कैसा?"

सिद्धनाथने उत्तर दिया, "ऐसा मालूम होता है कि 'अहं' और 'पर'के विवादने उनके भीतर उस ज्वालाको पहले ही भड़का दिया, जिसे हम उत्पन्न करना चाहते थे। शापके रूपमें उनकी वे आशंकाएँ बोल उठीं, जो अपने ऊपर दोष आनेके भयसे उनका 'अहं' छिपाये हुए था। उनकी वे आशंकाएँ सही हैं क्योंकि काशीकी वर्तमान परिस्थितियोंमें उनके साथ

घटी घटनाओंका संगम होनेसे यही निष्कर्ष निकलना चाहिए था। अपने ऊपर आरोप आते ही उनका 'अहं' भड़क उठा और दोषको किसी अन्यपर थोपनेके लिए उन्हें राजा बनारसे उपयुक्त पात्र और कोई नहीं मिला। यह शाप भी उसी सीमा तक फलीभूत होगा, जिस सीमा तक वे आशंकाएँ बलवती होंगी और वे आशंकाएँ उतनी ही बलवती होंगी, जितनी उनकी कारणभूत घटनाएँ...''

सिद्धनाथकी बीचमें ही टोक कर ताराने कहा, ''उन्हें अपने पुत्रोंकी ओरसे बहुत सन्ताप पहुँचा है...हाँ, उस दिन कहीं उन दोनों मेरे वे शब्द न सुन लिये हों, जो कर्पूरमञ्जरीके अभिनयके बारेमें पिताजीसे वादविवाद करते समय मेरे मुँहसे रोषमें निकल गये थे...''

''अवश्य सुने थे,'' धर्माध्यक्षने ज़ोर देकर कहा। ''अब मुझे बताना ही पड़ेगा। सुनो, सिद्धनाथ, आजसे पाँच बरस पहले राजा बनारने और मैंने मिल कर विश्वनाथ मन्दिरका समस्त सञ्चित धन रत्नकोशके रूपमें उनके लिंगके नीचे छिपा दिया था और ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि बिना लिंग को भग्न किये वह निकल न सके। वह रत्नकोश अथाह है। इस बातको अब तक केवल चार जन जानते थे : महामात्य, राजा बनार, मैं और यह तारा। लेकिन उस दिन इसने उसकी चर्चा की और कद्दू मिश्रके दोनों पुत्रोंने वह सारी बात बहुत ध्यानसे सुनी...मैंने ख़ूब देखा था।''

सिद्धनाथ कुछ समय तक ठगा-सा खड़ा रहा। फिर सहसा ही वह चेतन हो गया। और बोला : ''वही चुम्बक है, जो यवनोंको इतनी जल्दी खींच लाया है...आओ, मेरे साथ घर चलो। अब समय नहीं रह गया है। धर्माध्यक्षजी, आप पशुशालासे चार मज़बूत घोड़े निकलवाइए।''

चार अश्व लेकर उसी समय गदाधर सहित तीनों सिद्धनाथके घरकी ओर दौड़ पड़े। मार्गमें देखा चींटियोंके समूहमें तेलका छींटा पड़ चुका था। सारी काशी अस्तव्यस्त हो गई थी।

●

: तीसरा नेत्र :

घरके एक भीतरी कक्षके द्वारपर गदाधरको तैनात करके बन्द कक्षमें सिद्धनाथ, तारा और धर्माध्यक्षके बीच दो घड़ी तक एक गहन वादविवाद चला। यह वादविवाद निश्चय ही काशी-विश्वनाथके मन्दिर वाले रत्न-कोषके सम्बन्धमें था। जब द्वार खुले, तो धर्माध्यक्षजी सबसे अधिक उत्तेजित मालूम पड़ते थे, किन्तु शेष दोनों व्यक्तियोंके अनुरूप अब उनके मुखपर भी एक दृढ़ निश्चयकी छाप थी।

सिद्धनाथने गदाधरको कुछ आदेश दिये। थोड़ी ही देरमें वह न जाने कहाँसे चार मटके खाली करके ले आया। साथमें एक कुदाल थी और एक लोहेकी मोटी फुल्ली-जड़ा भारी लट्ठ था। इन सब वस्तुओंको उसने चारमेंसे एक घोड़े पर बहुत तत्परताके साथ बाँधा। इसके बाद उसने मकानको बाहरसे बहुत मज़बूतीके साथ बन्द कर दिया।

ताराने घोड़े पर सवार होते-होते रुक कर सिद्धनाथसे हँसते हुए पूछा, "और तुम्हारी वह बिल्ली कहाँ रह गई?"

"एक तो साथ ही है," सिद्धनाथने कहा, "और एकके लिए हमारे पड़ोसियोंके घरोंमें बहुत चूहे हैं। छत परसे उसने अपने लिए रास्ते बना रखे हैं।"

धर्माध्यक्ष पण्डित गणेशदत्तने कहा, "यह लड़की बहुत विकट है!"

दो क्षण बाद ही चारों घोड़े आगे-पीछे गलियाँ पार करते हुए काशी-विश्वनाथके मंदिरकी ओर दौड़ चले।

जब काशीमें हलचल मच रही थी, तब सैकड़ों ब्राह्मण काशी-विश्वनाथके मन्दिरमें शिवलिंगको घेरे हुए, कर्णभेदी स्वरमें रुद्रीका अखण्ड पाठ

कर रहे थे। सारा मन्दिर श्लोकोंके स्वरसे गुंजायमान हो रहा था। यही नहीं, काशी पर विपत्तिकी सूचना पाते ही स्वरोंमें वृद्धि होने लगी......!

कुछ पण्डितोंकी दृष्टि द्वार पर गई और धर्माध्यक्षजीको वहाँ खड़े देखकर वे तुरन्त खड़े हो गये। उनकी देखादेखी अन्य पण्डितजनोंने भी द्वारकी ओर देखकर उठनेका उपक्रम किया।

धर्माध्यक्षने गम्भीर और ऊँचे स्वरमें घोषणा की: "भगवान् विश्वनाथके भक्तो, शंकरका तीसरा नेत्र खुल रहा है। यवनोंका आक्रमण घड़ी भरमें होने वाला है। हम अकेले ही शिखरके भीतर बन्द होकर रुद्रीका पाठ करेंगे। मुख्य द्वारकी रक्षा करना ही आप सब लोगोंका धर्म है। सहायताके लिए राजभवनसे सैनिक चल पड़े हैं। शिखर खाली कर दो।"

पलक मारते भगदड़ मच गई। कुछ ही देरमें शिखर खाली हो गया। शिवलिङ्गकी हौदीमें अब भी बेलपत्र, नैवेद्य आदि भरा हुआ था। चारों ओर सुगन्धि और धुएँका वातावरण था। धर्माध्यक्षकी आज्ञासे प्रधान पुजारीने उन चारोंको शिखरके भीतर बन्द करके कुछ समय के लिए द्वार बन्द कर दिये।

धर्माध्यक्षजीने जब बाहर निकलकर शिखरका द्वार स्वयं अपने हाथों बन्द किया, तो गदाधरकी पीठपर एक भारी गट्ठर बँधा हुआ था।

इतनी देरमें युद्धके मोर्चेमें भारी परिवर्त्तन हो गया था। यवनोंकी सेना गङ्गाके दूसरे किनारे पर कोसों तक फैल गई थी और उसे जहाँसे अवसर मिला वहींसे वह काशीके भीतर घुस पड़ी थी। दसियों हज़ार नावें गङ्गाकी छातीपर तैर रही थीं। आकाश टिड्डी-दलकी भाँति उड़ते हुए तीरोंसे छाया हुआ था। उनकी छाया धूपसे चिलचिलाते हुए जलपर अपनी कालिमा बिखेर रही थी।

आक्रमणकारियोंके तुरङ्ग काशीकी मुख्य सड़कोंपर अन्धाधुन्ध दौड़ रहे थे। उनके सवारोंके हाथोंमें परशुरामके अस्त्र थे। महाबली भीमकी गदाएँ

थीं, भगवान् शंकरके त्रिशूल थे—देवताओंने मानो उन्हें उस दिन फाग खेलनेके लिए अपने शस्त्रागारोंसे चुन-चुन कर अस्त्र-शस्त्र दिये थे।

बनारसमें सामूहिक हत्याकाण्ड आरम्भ हो चुका था। स्त्रियाँ अपने बच्चोंको छातियोंसे चिपटाये घरोंमें बन्द हुई चीख रही थीं, पुरुषोंकी छातियोंसे रक्तके स्रोत खुल रहे थे। गलियोंमें ईटपत्थरोंके स्थानपर नरमुण्ड लुढ़कते फिर रहे थे।

काशीके तैंतीस करोड़ देवताओंको कभी इतना त्रास सहना नहीं पड़ा था। उनके निवास-स्थान आगकी भट्टियोंके रूपमें परिवर्त्तित हो गये थे। काशीकी असूर्यम्पश्या गलियोंमें अग्नि-देवताने हड़बड़ाकर आकाशकी ओर गमन करते हुए, सूर्यके रथके लिए द्वार खोल दिया था। मानो भारतके कोने-कोनेसे सिमटकर आये हुए संचित पापोंकी चिता जलकर अपनी लपटें गङ्गाकी गदली छातीमें चुभो रही थी।

काशी ढह रही थी, भूमिसात् हो रही थी। लगता था, जैसे उमापतिने भङ्गकी तरङ्गसे सहसा ही चौंककर भयानक अट्टहास किया था और इससे उनके हाथका त्रिशूल अचानक डिग गया था। युगों-युगोंमें आज पहली बार काशी की सड़ी हुई वीथिकाओंमें गरम-गरम रक्त बहकर उन्हें पवित्र कर रहा था!

यह वही काशी थी, जहाँ एक बार भगवान् विष्णुने अपना चक्र चलाकर एक पुष्करणी खोद डाली थी और अपने शरीरके स्वेदसे उसे भर दिया था। काशीका मानव आज काशीकी सैकड़ों पुष्करणियाँ अपने रक्तसे भर रहा था। यह वही काशी थी, जहाँ आधा कफ़न न दे पानेके कारण शैव्या अपने सत्यवादी पतिके सामने गिड़गिड़ाई थी, किन्तु अपने रोहितके शवको जलानेकी अनुमति नहीं पा सकी थी। हरिश्चन्द्रके उसी घाटकी सीमाएँ चतुर्दिक् काशीमें फैल गई थीं और उसमें हज़ारों रोहित नङ्गे, बिना जले, अधजले पड़े थे, क्योंकि उनके तनके कफ़न विदेशी आक्र-

मणिकारी छीन ले गये थे। यह वही काशी थी, जहाँ कोई भी तीर्थयात्री कुमारी-भोजन कराये बिना शंकरकी पूजाका अधिकार नहीं पाता था। आज वहाँ दुर्दान्त विदेशी उन्हीं कुमारियोंका सर्वस्व भोग कर रहे थे। काशीके हज़ारों हनुमान, जो नित्यप्रति लड्डुओं पर पलते आ रहे थे, आज जब अग्निकी असह्य वेदनासे छतों-छतों कूदकर भी त्राण नहीं पा रहे थे, तो उत्तुङ्ग अट्टालिकाओंसे भू पर आ पड़ते थे। अन्नपूर्णाके मन्दिरमें, जहाँ दीपावलीके दूसरे दिन मिठाइयोंका टीला बनता है, वहीं पर उस मिठाईका उपभोग करनेवालोंके मुण्डोंका टीला बन गया था।

भगवान् शंकरका तीसरा नेत्र खुल रहा था, रुद्र का शाप फल रहा था!

ऐसी अवस्थामें पण्डित गणेशदत्तके दोनों भोले शिष्य मकानके भीतर बन्द हुए, कोठों पर चढ़कर, जहाँ-तहाँ से इधर-उधर झाँक लेते थे। जिधर झाँकते थे एक अद्वितीय रोमाञ्चकारी दृश्य दृष्टिगोचर होता था। मकानके एक कोठेके नीचेसे तहखानेका रास्ता जाता था। वहीं दुबक कर दोनों कितनी ही देर तक बैठे भी रहे थे। किन्तु बाहर क्या हो रहा है यह जाने बिना जिज्ञासु शिष्योंको चैन नहीं था। तहखानेका अँधेरा फाड़ खानेको आता था। बाहर निकल कर ऊपर चढ़े, तो देखा कि काशी धू-धू करके जल रही थी।

हनुमानने शंकरसे कहा, "शंकर, गुरुजी अभी नहीं आये!"

"और हमारी भगिनी तारा भी नहीं आई!" हनुमानने उसे याद दिलाते हुए आशंकासे कहा।

"आनेको तो कह गये थे न?"

"आयँगे नहीं, तो जायँगे कहाँ? तूने भी तो सुना था?"

"हाँ, सुना तो था—पर आये नहीं......। पता नहीं कहाँ भटक रहे होंगे! पण्डित सिद्धनाथ भी तो उनके साथ थे......कहाँ रह गये?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ," शंकरने कहा।

"सोचनेसे क्या होगा ? चल, देखने चलें।"

"यदि किसीने पकड़कर सिर काट लिया, या उठाकर आगमें झोंक दिया, तो किसकी माँ को माँ कहेंगे, रे पागल ?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ," हनुमानने कहा, और दोनों बन्धु फिर टुकुर-टुकुर चारों ओरके विनाशकारी दृश्यको ताकने लगे। किसी प्रकार बाहर निकलकर दोनों आपत्तिके आकार-प्रकारका पता तो लगा आये थे, मगर उसके बाद भीतरसे मकानका बेंवड़ा लगाकर, नीचे-से-ऊपर और ऊपरसे घबराकर नीचे यही क्रिया निरन्तर चल रही थी।

उपर्युक्त वार्त्ताके कुछ समय बाद शङ्करको फिर कुलबुलाहट हुई। वह बोला, "सुबह-ही-सुबह राजभवन जाकर फिर लौटे ही नहीं...!"

"यही तो सोच रहा हूँ," हनुमानने फिर कहा।

"अब सोचनेसे क्या काम चलेगा ? चल, देख ही आयें..."इस बार शंकरने स्वयं प्रस्ताव रखा।

"अगर किसीने उठा कर अग्नि-देवताके मुँहमें डाल दिया तो ?"

"तो काशीमें प्राणत्याग करनेसे मुक्ति-लाभ होगा यह निश्चय है।"

इस मुक्तिकी कल्पना करके हनुमानकी बुद्धिकी एक मात्र उपज, उसकी घुटी हुई चाँदपर बल खाती हुई, बेलकी प्रतिरूप, उसकी चुटिया सिहर गई। उसने कहा, "शंकर, क्या हम लोग आज ही मर जायेंगे ?"

"हो सकता है कि हम दोनोंने इतने पुण्य न किये हों कि आज ही हमें मोक्षधामका लाभ प्राप्त हो।"

"तो चलो, देख ही आयें..." हनुमानने सोचते हुए कहा।

दोनों उतर कर मकानके निचले खण्डमें आये। शंकरने कहा, "क्यों, रे हनुमान, लाठियाँ तो उठा लें...?"

"हाँ, हाँ, अवश्य उठा ले। मेरी लाठी भी ले लेना। राहमें किसीको

अपने साथ स्वर्ग ले चलनेका अवसर मिला, तो यह अतिरिक्त पुण्य लाभ होगा।"

इसके बाद दोनोंने पारस्परिक सहमतिसे घरके भीतर मिल सकने वाले समस्त रत्नाभूषणोंको तहखानेमें उतारा और उसका गुप्त द्वार बन्द कर दिया। फिर चुपकेसे डरते-डरते द्वारका बेंवड़ा खोला और बाहर निकल गये। गलीमें दूर तक सन्नाटा नज़र आता था। किसी घरसे किसी स्त्रीके चीख़-चीख़ कर रोनेके स्वरके अतिरिक्त मानव-स्वर सुनाई नहीं पड़ रहा था। मालूम होता था मानो आतङ्कके राक्षसने रमणियोंके मुँहमें कपड़े ठूँस दिये हों।

कुछ ही दूर चलनेपर प्रतीत हुआ कि किसी प्रबल तुरंगकी टापोंसे धरती हिलती चली आ रही है। लपक कर दोनोंने एक घरका द्वार खोलना चाहा, किन्तु वह भीतरसे बन्द था। शंकरने सहम कर हनुमानकी ओर देखा। उसकी आँखें कह रही थीं कि मुक्ति-लाभ आशासे भी अधिक शीघ्र होने वाला है।

जिस घरके बाहर खड़े थे उसका द्वार छोटा था, किन्तु उसकी दोनों ओर पत्थरकी दो चौकियाँ थीं। दोनों उन्हीं पर उचक कर चढ़ गये। वे दो बुतोंकी तरह प्रतीत हो रहे थे। दरबानोंकी भाँति लाठियाँ कन्धों पर थीं और दोनों हाथ कस कर उन्हें पकड़े हुए थे। दोनों बन्धुओंने एक ही मुद्रा अपना कर आनेवाली विपत्तिसे त्राण पाने के लिए शंकर स्तोत्रका पाठ मन ही मन आरम्भ किया।

घोड़ेकी टापें तेज़ होती चली गईं। अब एक नहीं, दो घोड़े मालूम पड़ रहे थे। वे निकट आते थे और दोनों जिज्ञासुओंके हृदय तेज़ीसे उछलने में होड़ लगा रहे थे। यह जानकर तो उनका ख़ून ही सूख गया कि आनेवालोंने पासके ही घर पर रुक कर चिल्लाते हुए कहा, "अल्लाहो अकबर।" और इसके बाद उन्होंने जो कहा वह दोनों संस्कृतज्ञोंकी खाक

समझमें न आया। हाँ, ज़ोर-ज़ोरसे दरवाज़ा ठोंकनेका स्वर अवश्य सुनाई पड़ा। जब उसका भी कोई उत्तर नहीं मिला, तो वे आगे बढ़े। दोनों बन्धु सीधे तनकर खड़े हो गये।

एक अश्वारोही ठीक उनके सामने आकर रुका। उसके हाथमें ख़ूनसे सनी तेग़ चमक रही थी। अभी वह रुक कर आश्चर्यसे इन विचित्र मूर्तियोंको देख ही रहा था कि दोनों मूर्तियाँ एक साथ हिलीं और एक ही साथ दोनोंके लट्ठ यवन आरोहीके सिर पर बैठे। क्षण मात्रमें गलीके गंदे फ़रश पर लोट कर उसने दोनों दयामूर्तियोंको उसे मोक्ष पहुँचाने का पुण्य लाभ करनेका अवसर दिया। आवाज़ भी उसके गलेसे नहीं निकली। उसका घोड़ा निरुद्देश्य फिर वापस लौट चला।

लेकिन ख़ाली घोड़ा वापस लौटकर अधिक दूर नहीं जा सका। बराबरके ही किसी मकान पर दूसरा आक्रमणकारी सैनिक मौजूद था। वह अभी तक दरवाज़ा ही ठोंक रहा था। बिना सवारका घोड़ा देखकर उसने आवाज़ लगाई : "अब्दुल्ला !"

अब्दुल्ला उत्तर देनेकी स्थितिमें नहीं था। अतः उसका साथी उसका साथ देनेके लिए आगे बढ़ा और अब्दुल्लाको भूमि पर पड़ा देखकर आश्चर्यसे इधर-उधर देखने लगा। किन्तु अब शंकर और हनुमानके कलेजे जितनी तेज़ीसे धड़क रहे थे उतनी ही तेज़ीसे उन्हें अपनी लाठियों पर भी विश्वास हो गया था। उन्होंने अब्दुल्लाके साथीको भी अधिक आश्चर्य करनेका अवसर नहीं दिया। उसके सिर पर भी फुल्लियाँ जड़े हुए लट्ठ बैठे और वह भी परमधाम पहुँच गया। काशीसे पलायन करनेवाली आत्मा तत्काल स्वर्गमें स्थापित हो जाती है ऐसा ही शास्त्रोंका विधान है।

प्रसन्न होनेके स्थानपर शंकरने सहम कर कहा, "अब ?"

हनुमान बोला, "अब कोई चिन्ता नहीं। वाहन मिल गये हैं।"

"क्या ! क्या हम ब्राह्मण हो कर इन यवनोंकी पीठपर चढ़ कर स्वर्ग जायँगे...?" शंकरने कहा।

"अरे पागल," हनुमान बोला, "घोड़े मिल गये हैं घोड़े। इनपर चढ़ कर राजभवन तक पहुँचेंगे। चल, उतर जल्दीसे।"

किस प्रकार घोड़ेको चौकियोंके निकट ला ला कर दोनों उनपर सवार हुए और उसमें कितना परिश्रम उन्हें करना पड़ा यह कहना व्यर्थ है। हाँ, एक बार सवार होते ही घोड़ोंकी रकाबोंपर अधिक विश्वास न करके उन्होंने अपने पैरोंको घोड़ोंकी कमरपर कस कर गड़ा लिये और घोड़े उन्हें ले कर सरपट गली पार करने लगे। उसी समय पीछेसे उन्हें अन्य यवन सैनिकों का तुमुल घोष सुनाई पड़ा : "अल्लाहो अकबर !"

गलियाँ लम्बी और घूमघुमौवा थीं। कई जगह आगे यवनोंको देख कर उन्हें गलियाँ काटनी पड़ीं और कई बार जब उनका पीछा किया गया, तो भागते हुए नगरवासियोंको रौंदते हुए उन्हें साँस छोड़ कर भागना पड़ा। कई जगह लाठियोंका बेढंगा प्रयोग करना पड़ा। मगर गलियोंके बीभत्स दृश्योंकी ओरसे आँखें मूँदे किसी प्रकार उनके अश्व उन्हें राज-भवनके निकटस्थ घरों तक ले गये।

राजमार्गपर दृष्टि डालते ही उन्हें सर्वनाश दिखाई दिया। घबरा कर दोनों एक साथ घोड़ोंकी पकड़ छोड़ कर नीचे आ रहे। उठ कर पास ही स्थित एक खुले हुए मकानके भीतर भागे। एक दो नहीं, सैकड़ों ही यवन सिपाही उसी गलीकी ओर दौड़े आ रहे थे, जहाँ उनसे पहले उनके साथियोंने आ कर प्रलय मचाई थी।

भीतर घुस कर उन्होंने मकानका बेंवड़ा बन्द कर लिया। फिर धीमे-धीमे भीतरकी ओर पग बढ़ाये। जब अँधेरेसे निकल कर मकानके चौकमें आये, तो वहाँका दृश्य देख कर उन्होंने आँखें मींच लीं। देखा कि चौकमें निकली हुई खूँटियोंपर एक एक मनुष्यका सिरविहीन धड़ लटक रहा था !

सिरोंको अपने कर्त्तव्य पालनके चिह्न स्वरूप यवन सैनिक ले गये थे। धड़ सब पुरुषोंके थे। स्त्रियाँ कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रही थीं। शंकर और हनुमान एक-दूसरेसे सट गये। इसी अवस्थामें दोनों मकानके ऊपर वाले भागमें पहुँचे।

छतके जाली वाले कटहरेपर दोनोंने अपनी आँखें लगा दीं। सड़कका दृश्य स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। यवन सैनिक, जो गलीमें आना चाहते थे, गलीमें नहीं आये थे, बल्कि राजमार्गकी दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े हो गये थे। तभी दूरसे आती हुई शंकरके डमरू-जैसी ध्वनि सुनाई पड़ी। उन्होंने आँखें पसार कर देखा। राजभवनकी ओरसे यह ध्वनि निरंतर तीव्र होती हुई आ रही थी। कुछ ही देरमें उन्होंने लक्ष्य किया कि ऊंटोंका एक छोटा सा कारवाँ ढोल और ताशे बजाता हुआ सामनेसे गुज़र गया। इसके बाद घुड़सवारोंका दल हाथोंमें लाल-लाल शमशीरें और फरसे चमकाता हुआ गुज़रा। सबके सब 'अल्लाहो अकबर' के नारोंसे आकाशको गुंजा रहे थे। सबके एक-एक हाथ में एक-एक नरमुण्ड था और दूसरेमें एक-एक फरसा था।

इसके बाद एक ऊँटोंका दल और आया। उसका भी वही हाल था। किन्तु उसके बीचमें एक ऊँटको देखकर दोनों ब्राह्मण-बन्धुओंने आँखें फाड़ लीं। उस ऊँट पर राजाका रत्नजटित सिंहासन रखा हुआ था। उस सिंहासन पर...बीचोंबीच...राजा बनारका कटा हुआ सिर लटक रहा था। मुंडके केशोंको एक डोरके बीचसे बाँधकर, डोरके दोनों सिरोंको सिंहासनके डण्डोंसे बाँध दिया गया था। ऊँटकी पीठपर सिंहासनके इधर-उधर डोलनेसे वह डोलता हुआ राजमुण्ड बीभत्स दृश्य उत्पन्न कर रहा था। इतना ही नहीं, सिंहासनके चारों पायोंसे एक-एक मुण्ड और बँधा दिखाई पड़ रहा था। जिनमेंसे दो सामने होनेके कारण

किंञ्चित् पहचाने जा रहे थे। उनमेंसे एक मुण्ड महामात्य रामेश्वर शुक्लका था और दूसरा महासेनापतिका।

यह दृश्य देखकर शंकर और हनुमान रो पड़े। भीषण वेदना, ग्लानि, और दुःसह परितापसे उनके हृदय फटे जा रहे थे। हाय री काशी, यह तेरा क्या हो गया!

"शंकरका तीसरा नेत्र खुल गया है......! शंकरका तीसरा नेत्र खुल गया है......! सहसा ही एक मानवका तीव्र कर्णभेदी स्वर दोनोंको सुनाई पड़ा और उन्होंने आँखें खोलकर राजमार्ग पर फिर दृष्टि डाली। देखा कि राजा बनारका सिंहासन आगे चला गया है और उसके पीछे घोड़ोंकी दुहरी पंक्ति दौड़ती हुई आ रही है। उस पंक्तिमें आगे-आगे दो घोड़ोंमेंसे एक पर एक अठारह-उन्नीस बरसका हल्की दाढ़ी वाला लड़का था, जिसका सारा मुँह पट्टियोंसे बँधा हुआ था। केवल आँखें और मुखद्वार खुले थे। उसके बराबरवाले घोड़े पर एक काला पुरुष दिखाई पड़ रहा था, जिसकी आँखें अंगारोंकी तरह चमक रही थीं और जिसके हाथोंकी दोनों तलवारोंके सिरों पर राजा बनारके प्रमुख सभासदोंके सिर टँगे हुए थे।

"शंकरका तीसरा नेत्र खुल गया है......। सावधान, राजा बनार...! शंकरका तीसरा नेत्र खुल गया है......!" कहता हुआ एक वृद्ध सामनेके मकानसे द्रुत वेगसे निकला और हाथ उठा कर चिल्लाता हुआ घोड़ोंकी उस दोहरी पंक्तिकी ओर भागा। शंकर और हनुमानने चारो ओरकी स्थितिसे सहम कर कहा, "महापण्डित कट्टू मिश्र! यह तो महापण्डित हैं। ये लोग इन्हें मार डालेंगे!"

उसी समय शंकरकी निगाह घोड़ोंकी उस पंक्तिकी ओर गई और वह चिल्ला उठा, "हनुमान, देख, देख, ये तो वे ही अतिथि हैं, जो हमारे यहाँ ठहरे थे! क्या नाम हैं...जगन्नाथ पण्डित और भोलानाथ पण्डित!"

हनुमानने देखा, अगले दो घोड़ोंके पीछे वाले दो घोड़ोंपर पण्डित जगन्नाथ और पण्डित भोलानाथ नज़र आ रहे थे। वे आशंकासे अपनी ओर भाग कर आते हुए पिताको देख रहे थे।

कद्दू मिश्र सड़कके बीचोंबीच आकर खड़े हो गये। उनकी दृष्टिसे चञ्चलता बिलकुल लुप्त हो गई थी। उनके शरीरकी स्थितिसे प्रकट होता था कि उनका मस्तिष्क किसी एक ही परिधिमें भ्रमण कर रहा है। सम्भवतः राजा बनारने आने वाली विपत्तिसे बचानेके लिए उन्हें अपने किसी सभासद्के घरमें छिपा दिया था, और वह वही घर था, जिसमेंसे निकलकर वह इस असमयमें चिल्लाते हुए बाहर निकल आये थे।

राजमार्गके बीचोंबीच, आने वाले घोड़ोंकी पंक्तिके सम्मुख वह खड़े हो गये और हाथके संकेतसे सालार मसूदकी ओर लक्ष्य करके कहने लगे : "राजा बनार, सावधान! शंकरका तीसरा नेत्र खुल गया है!"

मार्गके दोनों ओरकी पंक्तियोंमेंसे अनेक यवन सैनिक आगे बढ़े। उनके हाथोंमें नंगी तलवारें थीं। मगर मियाँ राजबने दहाड़कर उन लोगोंको रोक दिया। नाई पीछेकी पंक्तिसे अलग हो कर सामने आया। मियाँ राजबने उससे पूछा, "यह बुड्ढा क्या बक रहा है?"

नाईने कहा, "यह कह रहा है कि ऐ राजा बनार, शंकरका तीसरा नेत्र खुल रहा है।"

"इसका क्या मतलब है?" मियाँ राजब बोला।

"पता नहीं, हूजूर," नाईने कहा। "ऐसा मालूम होता है कि यह कोई बदशगुनी मना रहा है...।"

मियाँ राजबने अपने घोड़ेको कुदा कर आगे बढ़ाया। वह सरपट दौड़ा। मियाँ राजबने अपनी तलवारको झटका दिया और उसपर लटका हुआ सिर सड़कपर जा कर लौटने लगा। फिर उसके हाथकी तलवारने वृद्ध तपस्वी कद्दू मिश्रका सिर धड़से अलग कर दिया। साथ ही सालार

मसूदने इशारा किया और घोड़ोंकी वह पंक्ति आगेवाले ऊँटोंका साथ पकड़नेके लिए दौड़ पड़ी। कट्टू मिश्रका भूलुण्ठित सिर सालार मसूद, जगन्नाथ, भोलानाथ आदिके अश्वोंकी टापोंके नीचे ठोकरें खाता हुआ लुढ़क चला।

शंकर और हनुमान दोनों बहुत देर तक खड़े इस लोमहर्षक काण्डके प्रणेताओंके लम्बे कारवाँको गुज़रते देखते रहे। फिर शंकरने कहा, "हनुमान!"

रोता हुआ हनुमान बोला" "हाँ, भैया।"

"चल, घर चलें। सब समाप्त हो गया। ये पापाचारी अब काशी-विश्वनाथके मन्दिरकी ओर जा रहे हैं। भगवान् शंकर त्रिशूलसे इन सबका सिर काट डालेंगे। पापका घड़ा भर गया है। वह अब फूटेगा।"

दोनों योग्य शिष्य जिस-किसी प्रकार अपनी चमड़ी बचाते हुए फिर लौट कर घरमें घुस गये। उन्होंने तहखाना खोला और उसमें घुस कर बैठ गये। इसके बाद पता नहीं वे भूखे-प्यासे उसमे कब तक पड़े रहे। इतना अवश्य है कि उन्हे उनकी इच्छाके अनुसार काशीके इस विनाशमें मुक्ति-लाभ नहीं हुआ।

यवनोंका हिंसक दल काशी-विश्वनाथके मन्दिरकी ओर बढ़ा जा रहा था। मन्दिरके पुजारियोंका भी वही हाल हुआ, जो सारे नगर-निवासियोंका हो चुका था। प्रांगण और चौखट सब रक्तसे प्लावित हो गये थे। उसीपर चिप-चिप करते सालार मसूद और मियाँ राजबके मुख्य दलने मन्दिरके मुख्य शिखरमें प्रवेश किया। प्रधान पुजारीका सिर मियाँ राजबकी तलवारपर टँग चुका था। उसे ही लिये हुए वह अपने स्वामीके साथ शिखरके भीतर पहुँचा। लेकिन पहुँचते ही वह चिल्लाया : "यह क्या!"

"मन्दिरके भीतर जितने यवन थे सभीने उचक-उचक कर देखा। युगों-युगोंसे पुजता आया महान् काशी-विश्वनाथका पाषाण-लिंग खण्ड-

खण्ड हो कर बिखरा हुआ पड़ा था। मियाँ राजब और सालार मसूदकी निगाह तुरन्त पीछे खड़े पण्डित जगन्नाथ और भोलानाथपर गई।

"यह क्या है?" मियाँ राजब अपने स्वाभाविक स्वरमें दहाड़ कर बोला, "यह कम्बख्त तो पहलेसे ही टूटा पड़ा है! कहाँ है वह जवाहरातका नायाब ख़ज़ाना, जिसका तुम लोगोंने हमें लालच दिया और हमारे ग़ाज़ीको उस वक्त तकलीफ़ दी, जब कि हम लोग लड़ाईका ख़तरा मोल लेनेकी हालतमें नहीं थे?"

नाईने तुरन्त ज्यों-का-त्यों अनुवाद करके मियाँ राजबका प्रश्न दोनों पण्डितपुत्रोंको सुनाया। वह एक-एक शब्द बोलता जा रहा था और दोनोंकी घिग्घी बँधती जा रही थी। काँपते हुए स्वरमें पण्डित जगन्नाथने कहा, "भगवान्की सौगन्ध खा कर कहता हूँ, मैंने स्वयं अपने कानोंसे सुना था कि रत्नोंका वह बहुमूल्य कोश इसी लिंगके नीचे छिपा पड़ा था...ओह! यह तो लगता है कि हमारे आनेसे पहले ही कोई इसके नीचेसे उसे निकाल कर ले गया है...। हे भगवन्, अब क्या होगा!" और वे आँखें फाड़ कर लिंगके खण्डित अंशोंको देखने लगे।

"चुप रहो, नमकहरामों!" मियाँ राजबने अपने दूसरे हाथकी तलवारको ऊँचे उठाते हुए कहा, "तुम्हारे बहकावेमें आ कर, हम लोगोंने पहलेसे जानते हुए भी, अपने ग्यारह जाँबाज़ और चोटीके सरदार खोये। तुम लोगोंके राजाने काठियोंकी पालिशमें ज़हर भर कर भेजा और वह रास्तेमें पसीना आनेसे घुल-घुल कर उनके तनबदनमें घुस गया। उन्होंने तड़प-तड़प कर जान दी। बोलो, क्या यह सच नहीं है?"

"सच है, सच है," जगन्नाथ और भोलानाथने फ़रशपर गिर कर दण्डवत् लेटते हुए कहा।

"तो यह लो...!" कह कर मियाँ राजब एक ही वारमें उनका काम तमाम करना ही चाहता था कि सालार मसूदने हाथ उठा कर उसे रोक दिया।

"ठहरो !" मसूदने हल्की आवाज़में कहा, इन लोगोंने अपना वादा पूरा नहीं किया, लेकिन हम अपना वादा नहीं तोड़ेंगे। राजा बनारका तख्त मँगाओ।"

हलचल मच गई। ग़ाज़ीका वचन तुरन्त पालन किया गया। तख्त वहीं भीतर शिखरमें मँगाया गया। उसके चारों पायोंसे अब तक चार सिर लटक रहे थे और बीचमें राजा बनारका सिर बँधा था। उसको देखते ही पण्डितपुत्रोंने हिचकियाँ लेते हुए अपने हाथोंसे मुँह ढाँक लिये।

मियाँ राजबने राजा बनारका सिर खोल कर एक अंगरक्षकको पकड़ाया और चिल्ला कर बोला, "बैठो, इस तख्तपर बैठो !"

सहमकर पण्डित-पुत्रोंने सालार मसूदकी आँखोंमें देखा। उसने सहज स्वरमें कहा, "हाँ, हाँ, बैठो। हम अपने वचनके अनुसार तुम्हें राजा बनारकी गद्दी बख्शते हैं।"

आशंकित और किञ्चित् प्रसन्न मनसे दोनों पण्डितपुत्र राजसिंहासनकी ओर बढ़े और उसके एक एक कोनेकी ओर सिकुड़ कर बैठ गये। मूर्खोंकी तरह हतप्रभ होकर वे मियाँ राजबकी ओर देखने लगे। उस मियाँ राजबने कहा।

"कहो कि ग़ज़नीके ग़ाज़ी तुम्हारे बारेमें अपना वादा पूरा किया।"

दोनों पण्डितपुत्रोंने इस आशयको व्यक्त करते हुए बड़बड़ा कर श्लोकसे पढ़े। नाईने झुककर ग़ाज़ीकी सेवामें अर्ज़ किया कि काफ़िरोंने ग़ाज़ीके वचनकी पूर्त्ति स्वीकार कर ली है।

सालार मसूदने मियाँ राजबकी ओर इशारा किया। वह तख्तके सामने पहुँचा और उसके हाथकी नंगी तलवारने एक ही जबर्दस्त वारमें नवीन गद्दीदारोंके सिर उनके धड़ोंसे अलग कर दिये। आश्चर्य-चकित, आँखें फाड़े, वे सिर मन्दिरके भीतर फुदकते फिरने लगे। जगन्नाथका सिर खंडित लिङ्गके जिस टुकड़े पर जाकर स्थिर हुआ वह शंकरका तीसरा नेत्र था।

●

: पूर्णाहुति :

काशीके इस लोमहर्षक काण्डके तीन दिन बाद सतरखकी गोगल-भुक्तिके नरहरि चौधरी सतरखके जंगलमें एक पहाड़ीकी चोटी पर खड़े थे। बलवान शरीरके ऊपर पसीनेकी बूँदें चुहचुहा रही थीं। गला प्यासके मारे शुष्क हो गया था। आँखों पर ओट देकर उन्होंने ध्यान देकर देखा और पास ही खड़े एक लट्ठधारी व्यक्तिसे बोले :

"बप्पा जी, मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि चार गधे आ रहे हैं और उनपर पानीके घड़े लदे हुए हैं।"

"हिरनोंको मरुस्थलमें कभी-कभी ऐसा ही भ्रम हो जाता है," बप्पाजीके रूपमें उस वृद्ध किन्तु ऊँचे डीलडौलके व्यक्तिने उत्तर दिया।

"अब इस जीवनमें जलके दर्शन नहीं होंगे, चौधरी जी। आओ चलें, नीचे खड़े वीर अकुला रहे होंगे।"

"नहीं, बप्पा जी, चार गधे हैं—एकदम चार हैं......चलो नीचे।"

दोनों आदमी पहाड़ीसे जल्दी-जल्दी नीचे उतरे। पहाड़ीकी छायामें हज़ारों आदमियोंका जमघट दूर-दूर तक फैला हुआ था। सबके पास भारी-भारी लट्ठ थे, बदन प्रायः नंगे थे, आँखें शिकारकी तलाशमें चमक-चमक कर इधर-उधर देखती थीं। नीचे आते ही नरहरि चौधरी चिल्लाये : "ओ मगना! ओ भीमा! ओ अरजन!"

तीन आदमी कुछ दूरी पर मोटे-मोटे लट्ठ बराबरमें रखे कंकरोंसे कुछ खेल रहे थे। आवाज़ सुनकर वे तीनों दौड़े आये। सबसे आगे वालेने कहा, "हाँ चौधरी! कहीं राजा इन्दरके दरसन हुए?"

नरहरि चौधरीने उन्हें दिशा बताते हुए चारों गधोंको ले आनेके लिए

कहा। चौधरीकी आज्ञा पाते ही तीनों उस तरफ़ दौड़ पड़े। कुछ देर बाद चौधरीने देखा कि सचमुच तीनों आदमी चार गधोंको थामे ला रहे हैं। साथमें तीन मानस और एक गंदे कपड़ों वाली महरिया थी। चारोंके चारों अपना मुँह ढँक कर रो रहे थे और रोते-रोते कहते जाते थे: "ग़रीब आदमीको रास्ता चलना दूभर हो गया है। कैसा बखत आ गया है! हाय राम, हाय मैया......!" आदि आदि।

डाँटकर नरहरि चौधरीने पूछा, "कौन हो तुम लोग? इन घड़ोंमें क्या है?"

"हाय, हाय!" महरिया वहीं ज़मीनपर बैठ कर फैल मचाती हुई बोली, "इन मटकोंमें और क्या होता हीरे-मोती? चूना है चूना। इसे बेच कर चार टुकड़े मिलेंगे...हमें पकड़ लिया! अब नगरमें पहुँचते पहुँचते देर हो जायगी...हाय, हाय, रे अन्यायियो...!"

लेकिन उसी समय उन गँवारोंमेंसे एक आदमीने मुँहपरसे हाथ हटा कर चौधरियोंकी तरफ़ देखा और प्रसन्नतासे चिल्ला कर बोला, "कौन? नरहरि चौधरी!"

चौधरी खड़ा हो गया। ध्यानसे उस निपट गँवारकी ओर देख कर उसने आश्चर्यसे चिल्ला कर कहा, "कौन पण्डित सिद्धनाथ! आप यहाँ! इस भेस में!"

सिद्धनाथ दौड़ कर चौधरीके गलेसे लिपट गया। बराबरमें खड़े बप्पाने भी उसे गले लगाया। सभी लोग प्रसन्न हो गये। महरियाने भी मुँह उघाड़ दिया। वह तारा थी। साथके दूसरे दो गँवार धर्माध्यक्ष पण्डित गणेशदत्त और गदाधर मल्ल थे।

अलग हो कर सिद्धनाथने कहा, "चलो चिन्ता मिटी।" फिर चारों ओर फैले मानवोंको देख कर वह बोला, "ओह! इतना बड़ा देशनिकाला!"

प्याससे शुष्क होंठोंपर जीभ फेरते हुए नरहरि चौधरीने कहा, "बैठो, बैठो, सब लोग बैठो। यहाँ खाट-पलंग तो कुछ है नहीं...पर फिर भी...। काशीसे इस भेसमें यहाँ कहाँ ?"

क्षण भरमें चारो तरफ़से लोग जुट गये। आपसके सुखदुःखकी वार्त्ता चल पड़ी। सिद्धनाथ और पण्डित गणेशदत्तने काशीके सर्वनाशका हाल बताया। पल भरमें बात सब लोगोंके कानोंमें पहुँच गई। काशी भूमिसात् हो गई! देवताओंका नगर, भगवान् शंकरका घर नष्ट हो गया! सुन कर सभी लोगोंके चेहरे प्यास, क्रोध और परितापकी घुटनके कारण लाल हो गये। नरहरि और बप्पा चौधरीने कहा :

"बहुत बुरा हुआ, पण्डितजी, बहुत बुरा हुआ! पर क्या करें, बेबस हैं। सत्तर गाँवके आदमी यहाँ बनमें पड़े भूखों-प्यासों मर रहे हैं। गाँवके गाँव उजाड़ दिये पापियोंने। सतरख उजड़ गया। चारो तरफ़ भूत डोलते हैं। न पासमें सामग्री है, न धन है। मौक़ा मिलता है, तो रातमें यवनोंकी छावनीके किसी कोनेको घर दबाते हैं और दो सौ चार सौको मार कर भाग आते हैं—दस-बीस अपने खो आते हैं...बस, यही धन्धा है, यही पेशा है। आज यहाँ, कल वहाँ...कुआँ मिलता है कुआँ, नहीं तो नदी-पोखरमें पानी पी लेते हैं। मरना सभीको है, बस, इसी आशापर जी रहे हैं...पर, भैया, इन घड़ोंमें क्या सचमुच चूना ही है ?"

सिद्धनाथ हँस पड़ा क्योंकि चौधरीके पूछनेसे पहले ही बहुतसे लोग घड़ोंके मुँह उघाड़-उघाड़कर देख चुके थे और निराश होकर अलग हट गये थे। भीतर हाथ देकर देखनेका भी साहस नहीं होता था। मानो सबमें आग भरी हुई थी।

"चूना तो है ही, पर यह तो बताओ कि स्त्रियों और बच्चोंको कहाँ छोड़ा ?" सिद्धनाथने पूछा।

नरहरि चौधरीके मुँह पर उदासी छा गई। "सब शंकरके आसरे

पर बड़े बूढ़ोंके साथ पूरबको तरफ़ खानाबदोश होकर चले गये। ज़िन्दे रहे तो फिर मिलेंगे। मर गये, तो भगवान् मालिक है। हम भी अब घरसे सैकड़ों कोस निकल आये हैं। कितने ही जागीरदारों और रईसोंसे मिले। सबके यहाँ मरने-मारनेको लोग खचाखच भरे पड़े हैं। ख़ुद ही लूटमार कर खाओ, ख़ुद ही लूटमार कर पहनो। न तनखा, न खानादाना—बस, हर जगहसे यही सुननेको मिला। सोचा कि लूटना ही है, तो साले विदेशियोंको लूटेंगे, अपने भाई-बहनों पर हाथ डालकर कब तक जियेंगे? कड़ा और माणिकपुरके रईस तो तुम जानो, अपने सहाई हैं। वहाँ और जा रहे थे कि तुम मिल गये...। तुम, पण्डितजी, काशीसे किस तरह भागे?"

सिद्धनाथने कहा, "यह चूना लोहेके मटकोंमें भरकर काशीसे घोड़ों पर भागे थे। दो दिन तक एक पहाड़की खोहमें छिपे पड़े रहे। आज एक पहर रात रहे निकले थे कि माणिकपुर जायेंगे। खाना-पीना जो था, सो कल चुक गया। राहमें घोड़ोंके बदले गधे लिये और जो मिला उससे कुछ खाया-पिया...।" सिद्धनाथने दृष्टिको भूमिकी ओर स्थिर किया। "पर, चौधरी, दिलोंमें आग लग रही है। इन गिद्धोंने आकर हमारा धर्म-कर्म, खेत-खलिहान, चाम और मांस सब नोच-नोचकर खा लिये हैं। एकको भी ज़िन्दा लौटकर देश नहीं पहुँचने देंगे यही प्रण है।"

बप्पा चौधरीने एक साँस ली। "डटे रहो, पण्डित," उन्होंने कहा। "यमराज सब प्रण और प्रतिज्ञा सहित प्राण खींच लेगा। भावना अच्छी बनी रही, तो परलोकमें बैकुण्ठ-लाभ होगा।"

"बैकुण्ठके स्थान पर यमराजको नरकके द्वार खोलने पड़ेंगे, बप्पाजी," सिद्धनाथने कहा। "वे अपने दूतों सहित बाईस लाखकी संख्यामें आकाशसे उतरे हैं। प्रति विदेशी दो यमदूतका सीधा गणित है।"

"क्यों?" बप्पाजीने पूछा, "कोई भविष्यवाणी है क्या?"

सिद्धनाथ हँसा, "यही होगा, बप्पाजी। यह चूना जो इन मटकोंमें

भरा है न, इसीके भीतर वे बाईस लाख यमदूत बन्द हैं। सारा चूना मन्त्रबलसे फूँका हुआ है। एक-एक चुटकी सब यवनोंके ऊपर छिड़क देनेसे ही उन्हें नरक-लाभ होगा। विश्वास न हो तो चलो माणिकपुर। अभी यवन वहाँ तक नहीं पहुँचे हैं। काशीके भैरवबाबाने इस चूने पर समाधि लगाकर पाँच बरस तक तपस्या की थी। इसीसे इसके भीतर इतना गुण पैदा हो गया। अब यहाँ प्यासे मरनेको क्यों पड़े हो? चलो, आगे एक कोस पर भूतिया बाबाकी बावली है। उसमें प्यास बुझानेको अथाह जल है।"

समाचार पाते ही सब लोग हर्षसे उछल-उछल कर बग़लें बजाने लगे। घड़ी भरमें सब अपना-अपना वाजबी-सा सामान मँगवाकर, चार गधोंको आगे आगे किये माणिकपुरकी ओर चल दिये।

बावली मिली और सब लोगोंने न केवल प्यास ही बुझाई, बल्कि स्नान करके ताज़े भी हो गये। मगर भूखने पैर टिकने नहीं दिये। तुरन्त फिर मञ्ज़िल पर बढ़ चले। गिरते-पड़ते सब लोग सन्ध्या तक माणिकपुर पहुँच गये। राय हड्कू वहाँके रईस थे। सुना तो भागे-भागे आये। गले मिले। बोले, "दस हज़ार लोग इकट्ठे हो गये हैं। हम भी आधीरातको यह स्थान छोड़ देंगे। सुना है काशीके बाद यवनोंका रुख इसी तरफ़ है। आश्चर्य है कि तीन दिन हो गये वे लोग काशीसे निकलकर चार कोस इधर छावनी डाले पड़े हैं और एक बित्ता भी आगे नहीं सरकते!"

सिद्धनाथ चौंका, "क्या कहा? काशीके इधर चार कोसपर पड़े हैं! एक बित्ता भी नहीं सरके! सच?"

"हाँ, हाँ, सच नहीं, तो क्या झूठ?" राय हड्कूने कहा, "आँधीकी गतिसे धरती पर छा जानेवाले यवन जड़की तरह पड़े हैं। मामला समझमें नहीं आता। कोई उड़ता-सा समाचार है कि उनका सबसे बड़ा सरदार कुछ..."

"हाँ, हाँ, कुछ...?" बेचैनीसे सिद्धनाथने आगे गरदन बढ़ाकर पूछा।

"कुछ बीमार है," राय हड्कूने सिद्धनाथकी हालतपर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। "मगर इतना क्यों चिन्तित हो, पण्डित जी?"

देखते-ही-देखते सिद्धनाथके मुखपर प्रसन्नताके चिह्न उभर आये। उसी अवस्थामें उसने पूछा, "कुछ पता नहीं चला कि कैसी बीमारी है?"

"कुछ पता चल कर नहीं देता," राय हड्कूने कहा। "पर तीन दिनसे छावनी बिलकुल शान्त पड़ी है, तो कोई ज्यादा ही बीमारी होगी। एक क़िस्मतका मारा भूला-भटका यवन सिपाही हमारे आदमियोंके हाथ आ गया। उसे मारपीट कर सारा हाल पता लगा। सुना है सारे सरदारोंके मुँहपर कालिमा सी पुती हुई है। इतना और पता लगा है कि उनके सरदारका कोई दुभाषिया नाई था, जो बहुत विश्वासपात्र था।"

"हाँ, हाँ, था," सिद्धनाथने उत्सुकतासे कहा।

"उन लोगोंने उसका सिर उसके धड़परसे उतार कर छावनीके ठीक बीचोंबीच एक ऊँचे बाँसपर टाँग रखा है।"

सिद्धनाथ सहसा ही प्रसन्नतासे चिल्लाकर उछल पड़ा। "ओह! यह कैसी मेरे कलेजेमें गङ्गा सी उतरती आ रही है! राय हड्कू, भण्डारे खोल दो। कढ़ाये-चढ़वा दो। सब लोगोंको भोजन कराओ। सेनाओंको दान बाँटो। आधी मञ्जिल सर हो गई है!"

सब लोग आश्चर्यसे सिद्धनाथकी ओर देखने लगे। राय हड्कू उसका बहुत मान करते थे। उसकी विद्वत्ता उनके दिलमें घर किये हुए थी। वह भी शङ्कासे उसकी ओर देखने लगे और बोले, "पण्डित जी, क्या बात है, कुछ बताइए तो?"

सिद्धनाथने कुछ स्थिर होकर कहा, "राय हड्कू, सुनो, सुनो : वह नाई एक रात मेरे यहाँ ठहरा था। उसे मैंने चलते समय एक रत्नजटित नेहरना उपहारमें दिया था। समझे?"

"खाक समझे !" राय हड्कूने कहा, "नेहरना दिया था, तो इससे क्या ?"

"वह नेहरना कालकूट विषमें बुझा हुआ था और उसने प्रसन्न होकर कहा था कि वह उसका प्रयोग सबसे पहले ग़ाज़ीके नाखूनों पर करेगा, जिससे वह पवित्र हो जाय ! अब समझे ?"

अब सब समझ गये थे। अप्पा चौधरी भूखसे बिलबिला रहे थे। वह शायद सबसे पहले समझे। वह बोले, "तो, इसका अर्थ है कि यवनोंके सरदारका काम तमाम हो गया...?"

"नहीं हुआ, तो हो जायगा," सिद्धनाथने कहा। उनकी छावनीमें जाकर, उनके तम्बूमें, सालार मसूदके पलङ्गके सामने छाती पर हाथ बाँधकर मैंने यह भविष्यवाणी की थी, और वह पूरी हुई। राय हड्कू, अब देर करनेका समय नहीं है। जब तक वे लोग सँभलें, उत्तर भारतके सारे राजाओं और जागीरदारोंकी सेनाओंको मिलाकर एक कर लो। इधर-उधर भटकते हुए लूटमार करनेवाले लोगोंको खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना देकर अपनेमें मिला लो। हम विदेशियोंसे संख्यामें कहीं अधिक हैं। हम एक भी विदेशीको जीवित नहीं लौटने देंगे। प्रतिज्ञा कर लो, राय हड्कू, प्रतिज्ञा करनेके लिए इससे उत्तम मुहूर्त्त और कोई नहीं मिलेगा।"

"आह !" राय हड्कूने हाथ मलते हुए कहा, "लेकिन इतने बड़े कामके लिए अर्घ्य कहाँसे आयगा, पण्डित सिद्धनाथ ? असम्भव प्रतिज्ञा न कराओ...।"

"आओ, तुम्हें भैरवबाबाके उस प्रसादके दर्शन कराऊँ, जिसके एक-एक कणके भीतर सौ-सौ मनुष्योंके लिए भोजन-पानीके सोते बन्द हैं।"

चारों गधोंको हाँककर राय हड्कूके भवनमें लाया गया। वहाँ बन्द कक्षमें, पचासों प्रमुख व्यक्तियोंके सम्मुख चारों घड़ोंको एक बड़ी नाँदमें

उलटा गया। मानो चूनेके ढेरमेंसे सैकड़ों छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे रत्न उसमेंसे झाँकने लगे। सभी लोगोंकी आखें इतना बड़ा रत्नकोश देखकर चौंधिया गईं। प्रत्येक रत्नमें विदेशियोंके लिए एक ज्वालामुखी दृष्टिगोचर हो रहा था।

राय हड्कू आँखें फाड़कर कभी सिद्धनाथ और पण्डित गणेशदत्तको ओर देख रहे थे, कभी रत्नराशिकी ओर। सिद्धनाथने चिल्लाकर कहा, "सावधान! यह भगवान् विश्वनाथको इसी दिनके लिए चढ़ाया हुआ वह अर्घ्य है, जो काशीविश्नाथके मंदिरमें युगों-युगोंसे एकत्र होता आया है। इसका ज़रा भी दुरुपयोग हुआ, तो इसका भोग करनेवाला कोढ़ी होकर प्राण त्याग करेगा। कम से कम तीस लाख सेना एकत्र करके विदेशियोंके आक्रमणकारी दलका समूल सर्वनाश यही इस अर्घ्यका उद्देश्य है, यही इसका उपयोग है, यही भगवान् रुद्रके भग्न लिङ्गका निर्देश है।"

"भगवान् विश्वनाथको चढ़ा हुआ अर्घ्य!" राय हड्कू सहमते हुए बोले, "इसका उपयोग करना तो पाप है।"

सिद्धनाथकी आँखें यह सुन कर चढ़ गईं। वह तीव्र दृष्टिसे देखता हुआ बोला, "राय हड्कू, ये आज कैसी धर्मद्रोही भावना है! क्या यवनोंके हाथों काशी विश्वनाथका लिंग भग्न नहीं हुआ है? क्या सतरखके भैरव बाबाका मन्दिर म्लेच्छ विदेशियोंके पैरों तले नहीं रौंदा गया है? क्या हम ऊँचे-ऊँचे शिखर बना कर मन्दिरोंमें इसी लिए धन संचय करते रहते हैं कि किसी दिन विदेशी आ कर मन्दिरके देवताको पैरों तले रौंद दें और अपने देशमें जाकर उसके अर्घ्यसे नारीका व्यापार करें? यदि मन्दिरोंमें चढ़ा हुआ चढ़ावा देश-रक्षाके काम नहीं आया, तो वह धन नहीं है। वह सड़ा हुआ गोबर है, जो खाद बन कर नई फ़सल उगा सकता था, लेकिन जो हमारी मूर्खतासे सड़ान्ध और गन्दगी पैदा कर रहा है।"

"शान्त हो जाइए, पण्डितजी, शान्त हो जाइए," बप्पा चौधरीने

कहा। "आपने जैसी व्यवस्था दी है वैसा ही प्रबन्ध किया जायगा। आप निश्चिन्त रहिए। आप और काशीके धर्माध्यक्ष जैसे बड़े ब्राह्मण जब इसकी व्यवस्था देते हैं, तो हम लोगोंके पास सोचनेके लिए कुछ नहीं रह जाता।"

राय हड़कूने सिर नीचा कर लिया।

इसके बाद वह रात लोगोंके भोजन करते, हँसते, चिल्लाते बीती। सुबह होते ही राय हड़कू एक दूसरे ही मनुष्यके रूपमें बदल गये थे। युद्धका बाना धारण करके उन्होंने नरहरि चौधरी और बप्पा चौधरीके साथ उत्तर भारतकी सेनाओंके संगठनके निमित्त गृहत्याग कर दिया। चलते समय पण्डित सिद्धनाथने राय हड़कूको उपदेश देते हुए कहा :

"हम लोग परसों कड़ामें मिलेंगे। तब तक गाँव-गाँवसे जितने भी लुहार आप काम पर लगा सकें, उतना ही शुभ होगा।"

"लुहार! क्या अब तीर-तलवार बनानेका समय रह गया है?" राय हड़कूने पूछा।

"तीर-तलवार नहीं, काँटे," सिद्धनाथने कहा. "जिन्हें हम विदेशियों की राहमें बिछायँगे...मैं परसों तक यहाँ ठहरकर अग्नि देवताका आह्वान करूँगा। यदि उन्हें जगा पानेमें सफल हो सका, तो आपके द्वारा संगठित सेनासे विदेशियोंके आधे सैनिक ही मुठभेड़ कर पायेंगे।"

"और शेष आधे?" राय हड़कूने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"आधे अग्नि देवता और लौह देवताकी भेंट हो जायँगे," सिद्धनाथने वार्त्ताको अन्तिम सङ्केत देते हुए कहा।

राय हड़कूके घोड़े बढ़ चले। पच्चीस विश्वासपात्र सरदारोंके कमरबन्दोंमें काशी-विश्वनाथका आधा अर्घ्य बँधा था। सभीने सौगन्ध खाई थी कि या तो विदेशियोंका चिह्न समाप्त हो जायगा, या हम और हमारे कमरबन्दोंमें बँधे हुए लाखों सैनिक युद्ध-भूमिमें खेत रहेंगे।

नरहरि और बप्पा चौधरी सिद्धनाथके साथ रह गये थे। वे लोग अग्निदेवताके आह्वानमें सिद्धनाथको सहयोग दे रहे थे। उनके हज़ारों साथी कोसोंकी परिधिमें झाड़-झंखाड़की ऊँची दीवारें खड़ी कर रहे थे। जङ्गल-के-जङ्गल कट रहे थे और दीवारोंको अभेद्य बनाते जा रहे थे। प्रतिपल, प्रतिदिन, प्रति सप्ताह ये दीवारें घनी दृढ़ और दुरूह होती जा रही थीं। स्थान-स्थान पर उनमें कोयला, गन्धक, क़लमी शोरा जैसी आग्नेय वस्तुएँ घने परिमाणमें एकत्र करके डाली गई थीं। तब तक कड़ामें लुहारोंने बड़ी-बड़ी भट्टियाँ दहका दी थीं। विचित्र प्रकारके गोले उन भट्टियोंसे हज़ारोंकी संख्यामें बनकर निकल रहे थे। सिद्धनाथ, तारा, पण्डित गणेश-दत्त, गदाधर, नरहरि चौधरी, बप्पा चौधरी सब रात और दिन, समय-असमय भट्टियोंके बीच लाल-लाल भूतोंकी तरह घूमते दिखाई पड़ते थे। सीमाओं पर दूत लगे हुए थे। प्रति क्षण उनके समाचारोंकी प्रतीक्षा रहती थी—एक-दो नहीं, ग्यारह लाख यवनोंके आक्रमणकी प्रतीक्षा। राय हड्डू न जाने कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचे थे। जिस दिनसे वह गये उस दिनसे उनका कोई समाचार नहीं मिला था।

फिर एक दिन समाचार मिला कि घावसे बेचैन, क्रूर आँखोंवाला भयंकर विदेशी राक्षस जाग गया है। यवनोंकी छावनीमें हलचल मच गई है और कूचकी तैयारियाँ हो रही हैं।

गदाधरके नेतृत्वमें, मशालें हाथमें संभाले, आग्नेय टुकड़ियाँ सैकड़ोंकी संख्यामें कड़ाके केन्द्रबिन्दुसे झाड़-झंखाड़की विस्तीर्ण दीवारोंकी ओर चल पड़ीं।

तासे और ढोल बजाती यवनोंकी विशाल वाहिनी माणिकपुर और कड़ाकी ओर चल पड़ी। एक दिनकी मञ्जिलके बाद पड़ाव पड़ा। माणिकपुरकी ओरसे एक अश्वारोही, अपने दोनों हाथ ऊपरकी ओर उठाये और मुँह से घोड़ेकी लगाम थामे यवनोंकी छावनीकी ओर दौड़ा।

मियाँ राजबके तम्बूमें माणिकपुरके राजदूतको बातचीतके लिए बुलाया गया। स्वभावतः मियाँ राजबने दहाड़कर पूछा : "क्या कहना चाहते हो ?"

इस बार एक दूसरा दुभाषिया नाईके स्थान पर खड़ा दिखाई दिया। उसने मियाँ राजबके अन्दाज़में ही प्रश्नको दोहराया।

राजदूतने निवेदन किया, "अपने इलाकेमें हम यवन सरदारका सहर्ष स्वागत करते हैं। किन्तु यदि उनके प्रमुख सरदारोंके अतिरिक्त अन्य यवन सैनिकोंने हमारी सीमाके भीतर पैर रखा, तो अग्निदेवता उनको भस्म कर देंगे। सीमापर राय हड़कू, राय मकड़ू, राय सकड़ू, राय रायब, राय श्रीपाल, राय हरपाल, राय जयपाल, राय..."

"ये कुल कितने राय हैं?" मियाँ राजब बार-बार 'राय, राय' सुन कर चिल्लाया।

"सत्तर छोटे और बड़े राजा तीस लाख शंकरके चरोंके साथ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं," राजदूतने कहा। "आप पीछे जो उजाड़ कर आये हैं या तो उसका हरजाना देंगे, नहीं तो स्वदेश लौटनेकी आशा छोड़ कर आगे बढ़ेंगे। राजे लोग आपका उत्तर सुननेके लिए बेचैन हैं।"

मियाँ राजबने एक तीव्र अट्टहास किया और बोला, "प्यारे दोस्त, हमने एक बार एक राजदूतको वापस जाने दे कर ग़लती की थी और हमने उसका ऐसा खमयाज़ा भुगता कि... ख़ैर, अब उन 'रायों'को कभी हमारी राय मालूम नहीं होगी। तुम कभी उनके पास नहीं पहुँच पाओगे..." और उसने हिंसक दृष्टिसे राजदूतकी ओर देखा...

वह ग़रीब राजदूत कभी वापस नहीं लौटा।

अगली सुबहको यवन सेना फिर माणिकपुरकी ओर बढ़ने लगी। क़दम-क़दमसे कोस पार होते चले गये। यवन सैनिक हुँकारते, शोर मचाते, धर्मके उन्मादमें आगे बढ़ते चले गये और अगला पड़ाव एक जंगलके बीच

पड़ा। उस तिथिकी रात्रिने उनको धीरे-धीरे काली चादर ओढ़ा कर सुला दिया। और आधी रातके बाद...

अग्निदेवता अपने करोड़ों नेत्रोंको खोल कर जाग उठे। जहाँ-तहाँसे गन्धक, राल, कलमी शोरे और कोयलेकी भयानक चीखें सुनाई पड़ने लगीं। छोटे-मोटे धड़ाके चारों ओरसे सुनाई देने लगे। चारों ओरसे सारे जंगलमें दिनका प्रकाश छा गया और आग अपनी लपलपाती करोड़ों जीभोंको निकाले यवनोंकी छावनीकी ओर बढ़ने लगी।

छावनी दूर-दूर तक फैली हुई थी। दीवार भी दूर-दूर तक थी। यवन सैनिक हड़बड़ा कर अपने परमात्माका नाम लेते हुए इधर-उधर भागे। वे उस अग्निपुंजसे बाहर निकलना चाहते थे। उन्होंने लट्ठों और बाल्सोंसे आगको बुझानेकी चेष्टा की। हज़ारों धुँएसे घुट कर मर गये, हज़ारों उस विचित्र दीवारकी कन्दराओंमें जलभुन कर ख़ाक हो गये, हज़ारोंके कपड़ोंमें आग लग गई और वे आतिशबाज़ीकी चरखियोंकी तरह जहाँ-तहाँ नाचते फिरे—यवनोंकी यह वाहिनी जब अगले दिनके दोपहर तक दोज़ख़की इस भयानक आगसे निकल कर आगे बढ़ी, तो उसके तीन लाख ज़िन्दा अदद या तो गायब हो गये थे या युद्धके योग्य नहीं रह गये थे। शेष जिहादियोंके बीच ग़ाज़ी सालार मसूद का मारक विषसे आक्रान्त, साँस लेता हुआ शरीर हिंसाकी और भी भयानक चिनगारी छिटकाता हुआ माणिकपुरकी ओर तीव्र गतिसे चला। मगर वहाँ एक भी घर बसा हुआ नहीं मिला। खेत और खलिहान, सब उनके आनेसे पहले ही अग्नि देवताके भोगमें काम आ चुके थे।

ग़ाज़ीने आज्ञा दी : जहाँ जो काफ़िर मिले, बिना धर्मपरिवर्त्तनके लिए पूछे ही उसका सिर धड़से जुदा कर दिया जाय।

मगर काफ़िर तो रास्ता साफ़ करते हुए पीछे-ही-पीछे हटते चले जा रहे थे। आक्रान्ताओंकी तलवारें प्याससे पीड़ित थीं। उनके गले भी

शुष्क हो गये थे। जहाँ पानी मिलता था वहीं हज़ारों यवन विषसे तड़प-तड़प कर प्राण दे रहे थे। जब उनका अन्त समय इतना समीप आ जाता था कि आँखें फटने लगती थीं, ज़बान खुल नहीं सकती थी, तभी उन्हें धर्म और ईमानपर लुढ़कती हुई कुटिल राजनीतिके निजी स्वार्थपूर्ण चक्रके दर्शन होते थे किन्तु तब वे किसीको बतानेकी स्थितिमें ही नहीं रहते थे।

कड़ाके भवनोंको भूमिके साथ समतल करती हुई ग़ाज़ीकी सेना और आगे बढ़ी—कहीं इन्सानका निशान नज़र नहीं आता था। कोई उनका मुक़ाबला करता दिखाई नहीं पड़ता था। ग़ाज़ीने हुक्म दिया। यवनोंकी दो लाख अश्वारोहियोंकी पंक्तियाँ अग्रिम दस्तेके रूपमें शेष सेनासे अलग हो कर सरपट आगेकी ओर दौड़ीं। मगर वे पंक्तियाँ कभी सही-सालिम लौट कर नहीं आईं।

समाचार लानेवालोंने मियाँ राजबके सामने कुछ लोहेके गोले पेश किये। मियाँ राजब और पीड़ासे कराहता हुआ ग़ाज़ी मसूद आँखें फाड़कर उन लोहेके गोलों को देखने लगे। प्रत्येक गोलेमें हथेली भर लंबे लंबे, पाँच पाँच तीखी नोक वाले काँटे खड़े थे, संदेशवाहक अश्वारोहियोंमेंसे एकने कहा, "हुज़ूर, काँटे ऊपर किये ये गोले आगेकी ज़मीनमें बीसियों कोस तक जहाँ-तहाँ ज़मीनमें धँसे हुए हैं। इनसे ठोकर खाकर हमारे घुड़-सवार एक बार गिरकर फिर उठनेके योग्य नहीं रहते, उनके तनबदन इनसे छिद जाते हैं। हमारे दो लाख घुड़सवार इनकी भेंट हो गये हैं।"

बाहरी और भीतरी पीड़ासे चिल्ला कर ग़ाजीने कहा, "इनको उखाड़ फेंको!" कष्टसे काँपता हुआ वह खड़ा हो गया और फुसफुसाती आवाज़में मैं दहाड़ा: "कूच करो! हमें बालारुख़ पहुँचना है। वहाँ हमारा वह ताज़ा बाग़ है, जिसमें हमें शान्ति मिलेगी। वहाँ हमारा वह इमलीका पेड़ है,

जिसकी छायामें बैठकर हम बालारुखके सरोवरसे अपनी आँखें ठंढी करेंगे। चलो, वहाँ हमारे लिए जन्नतका परिस्तान है।"

गोले उखड़े, सेनाएँ आगे बढ़ीं और तीन दिन तक बराबर चलती रहीं क्योंकि ग़ाज़ीको मरते-मरते भी परिस्तान तक पहुँचाना था। हज़ारों सिपाही बीच रास्तेमें ही भूख और प्याससे ढेर हो गये। एक दिन इमलीके पेड़के नीचे पहुँचकर सालार मसूदका महमिल उतरा। नरम घास पर लेटकर उसने एक ठंढी आह ली और मियाँ राजबको पास खींचते हुए, काँपते होंठोंसे बोला: "राजब, तूने मेरी बड़ी खिदमत की है। अब मैं जा रहा हूँ। जाना ही पड़ेगा। पैग़म्बर मुझे बुला रहा है। पर अब मुझे यह महसूस होता है कि धर्मयुद्धके नाम पर यह जो इतना हत्याकाण्ड हुआ है और होता है वह पैग़म्बरके इशारे पर नहीं, हमारे निजी राजनीतिक स्वार्थके इशारे पर हुआ है। मगर धर्मसे अन्धा इन्सान कभी इस बातको नहीं समझ सकेगा......कभी नहीं......!" और उसने अन्तिम हिचकी लेकर सदाके लिए धर्मयुद्धसे हाथ खींच लिया।

मियाँ राजब रोता हुआ उठा और जब वह चेता, तब बहुत देर हो चुकी थी। चारों ओरसे आग, लोहा, पत्थर बरस रहा था। कराहें उठ रही थीं। पाँच और तीसका अनुपात था, जो तेज़ीके साथ कम होता जा रहा था। अन्तमें एक भाला उसकी छातीमें आकर लगा और उसकी आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया। गिरते-गिरते उसने देखा, सामने सरोवरके दूसरे किनारे पर, भग्न शिवलिङ्गके सामने, एक नर और एक नारी खड़े हैं। दोनोंके हाथ एक दूसरेके साथ बँधे हुए हैं। मियाँ राजबको लगा कि इस बीभत्स, विस्तीर्ण और विशाल नाटकके वे दोनों ही परम दर्शक हैं।

●

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक

१. भारतीय विचारधारा २)
२. अध्यात्म-पदावली ४||)
३. वैदिक साहित्य ६)

कहानियाँ

४. संघर्षके बाद ३)
५. गहरे पानी पठ २||)
६. आकाशके तारे : धरतीके फूल २)
७. पहला कहानीकार २||)
८. खेल-खिलौने २)
९. अतीतके कंपन ३)
१०. जिन खोजा तिन पाइयाँ २||)
११. नये बादल २||)
१२. कुछ मोती कुछ सीप २||)

कविता

१३. वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)
१४. मिलन-यामिनी ४)
१५. धूपके धान ३)
१६. मेरे बापू २||)
१७. पञ्चप्रदीप २)

संस्मरण, रेखाचित्र

१८. हमारे आराध्य ३)
१९. संस्मरण ३)
२०. रेखाचित्र ४)
२१. जैन जागरणके अग्रदूत ५)

उर्दू शायरी

२२. शेरो-शायरी [द्वि० सं०] ८)
२३. शेरो सुखन [पाँचों भाग] २०)

राजनीति

२४. एशियाकी राजनीति ६)

ऐतिहासिक

२५. खण्डहरोंका वैभव ६)
२६ खोजकी पगडण्डियाँ ४)
२७. चौलुक्य कुमारपाल ४)
२८. कालिदासका भारत [१, २] ८)
२९. हिन्दी जैनसाहित्य परिशीलन [भाग १, २] ५)

ज्योतिष

३०. भारतीय ज्योतिष ६)
३१. केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि ४)
३२. करलक्खण [द्वि० सं०] |||)

नाटक

३३. रजतरश्मि २||)
३४. रेडियो-नाट्य-शिल्प २||)
३५. पचपनका फेर ३)
३६. और खाई बढ़ती गई २||)

उपन्यास, सूक्तियाँ

३७. मुक्तिदूत ५)
३८. तीसरा नेत्र २||)
३९. रक्त राग ३)
४०. ज्ञान-गंगा [सूक्तियाँ] ६)

निबन्ध, आलोचना

४१. ज़िन्दगी मुसकराई ४)
४२. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद ३)
४३. शरतके नारीपात्र ४||)
४४. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ २||)

विविध

४५. द्विवेदी-पत्रावली २||)
४६. ध्वनि और संगीत ४)
४७. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि० सं०] १)